॥ श्रीः ॥

पवनविजयस्वरोदयः

व्याख्याकार :

एस० एन० खण्डेलवाल

सम्पादक :

राधिकारमण श्रीवास्तव

भारतीय विद्या प्रकाशन

दिल्ली वाराणसी

॥श्रीः॥
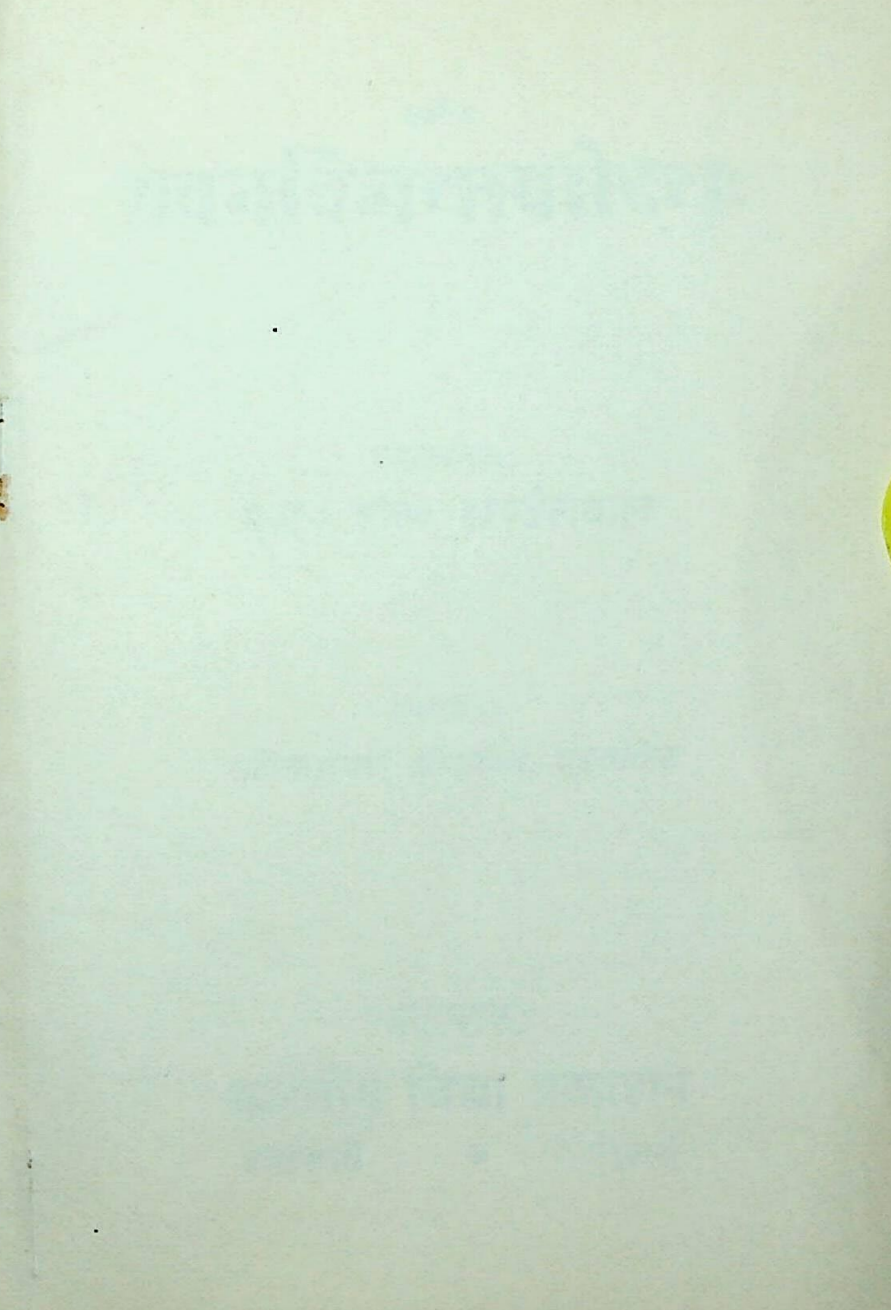
पवनविजयस्वरोदयः

व्याख्याकारः

एस० एन० खण्डेलवाल

सम्पादकः

राधिकारमण श्रीवास्तव, एडवोकेट

प्रकाशकः

भारतीय विद्या प्रकाशन

वाराणसी • दिल्ली

निवेदन

पवनविजयस्वरोदय स्वरशास्त्र का अप्रतिम ग्रंथ है। हिन्दीभाषा में इसका प्रकाशन दीर्घकाल से नहीं हो सका था। सम्प्रति बंगभाषा में इसकी अनेक मुद्रित प्रतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। गुजरात में भी इसका प्रचलन है।

स्वरशास्त्र मूलत: श्वास-प्रक्रिया पर आधारित शास्त्र है। श्वास-प्रक्रिया जीवन की परम चरम स्थिति से उद्भूत होती है और स्पन्दनात्मक झंकृति से सूक्ष्मशरीरस्थ समस्त चक्रों को प्रान्दोलित करती रहती है। इसका अत्यन्त गम्भीर रहस्य तथा प्रभाव प्राक्कालीन विद्वानों ने अपनी अन्तर्दृष्टि से अनुभूत कर जनसामान्य के हितार्थ उसके अत्यन्त प्रभावकारी रूप का वर्णन स्वरशास्त्र के माध्यम से किया है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि स्वरशास्त्र का सन्धान पाने के लिये श्वासप्रक्रिया के अति सूक्ष्म रूप स्पन्दनात्मक स्थिति (VIBRATION) का भी सन्धान प्राप्त करना आवश्यक है। यह स्थिति अन्त:कुम्भक में प्राप्त होती है। इसलिये यह शास्त्र भी अनुशीलन-योग्य प्रतीत होता है, जब यथार्थ सद्‌गुरु का शक्तिपात शिष्य की प्रसुप्त चेतना को उन्मिषित करने के लिये उसके सहस्त्रदल को क्षणार्ध के लिये अपने शिव स्पर्श से आप्यायित करे। अन्यथा यह शास्त्र मात्र श्वास-प्रश्वास का स्पर्श अनुभव करके कुछ स्थूल अभिज्ञता देने के अतिरिक्त अपने यथार्थ स्वरूप को गोपित ही रख लेता है।

कृष्णाजन्माष्टमी–१९९९ई० — निवेदक

बी ३१/३२ लंका, वाराणसी — ***एस० एन० खण्डेलवाल***

विषयानुक्रमणिका

ज्ञानकाण्डम्

अध्याय १

ज्ञानकाण्डम्

श्री पार्वती उवाच

देवदेव महादेव तत्वज्ञ परमेश्वर ।
कथयस्य प्रभो ज्ञानं कृपां कृत्वा ममोपरि ।।१।।

देवी पार्वती कहती हैं हे देवेदेव! महादेव! तत्वज्ञ! परमेश्वर! हे प्रभो! मुझ पर कृपा करके ज्ञान के सम्बन्ध में बतलाने का कष्ट करें।।१।।

कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्त्तते ।
कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयम् ।।२।।

हे देव! किस प्रकार से ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है? किस प्रकार से इसका परिवर्तन होता है और कैसे इसका विलय हो जाता है? कृपया इस समस्त ब्रह्माण्ड विषयक निर्णय (जिज्ञासाओं) का समाधान करें।।२।।

महादेव उवाच–

तत्वादब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्वेन परिवर्त्तते ।
तत्वेन लीयते देवि तत्वादब्रह्माण्डनिर्णयः ।।३।।

महादेव कहते हैं: हे देवी! तत्व से ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति तथ्रा परिवर्तन होता है और इसका विलय भी तत्व में हो जाता है। इसलिये तत्व ही ब्रह्माण्डनिर्णय का मूल कारण है।।३।।

देव्युवाच–

तत्वमेव परं मूलं निश्चितं तत्ववेदेभिः ।
तत्वस्वरूपं किं देव तत्वमेव प्रकाशय ।।४।।
निरञ्जनो निराकारं एकदेवो महेश्वरः ।
तस्मादाकाशमुत्पन्नं आकाशाद्वायुसम्भवः ।
वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वीसमुद्भवः ।।५।।

ईश्वर कहते हैं–प्रथमतः एकमात्र निरंजन निराकार महेश्वर से ही आकाश उत्पन्न हुआ है। तदनन्तर आकाश से वायु, वायु से तेजः, तेजः से जल, एवं जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है।।४-५।।

एतानि पञ्चतत्वानि विस्तीर्णानि च पञ्चधा ।

तेभ्यो ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्त्तते ।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः ।।६।।

ये ही पंच तत्व हैं। ये पंचतत्व पांच प्रकार से प्रसारित होते हैं। इन पंचतत्वों से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है। समस्त परिवर्तन होता है। इनके द्वारा ही सब का विलय होता है और इनसे ही ब्रह्माण्ड का स्फुरण भी होता है।।६।।

पञ्चतत्वमये देहे पञ्चतत्वानि सुन्दरि ।
सूक्ष्मरूपेण वर्त्तन्ते जायते तत्वयोगिभिः ।।७।।

तत्वयोगीगण इसप्रकार से कहते हैं कि इस पंचतत्वमय शरीर में भी उक्त पंचतत्व सूक्ष्मरूपेण विद्यमान रहते हैं।।७।।

अतएव प्रवक्ष्यामि शरीरस्थं स्वरोदयम् ।
हंसचारस्वरूपेण भवेत् ज्ञानं त्रिकालगम् ।।८।।

हे देवी! अब शरीरस्थ स्वरोदय का वर्णन करता हूं। जीव के देह में हंस स्वरूप से श्वास का प्रवाह चलता रहता है। अर्थात् श्वास-प्रश्वास के समय वायु के अंदर और बाहर आने जाने से हंस शब्द का स्वतः उच्चारण होता रहता है। (हं शब्द से शिव का तथा "सः" से शक्ति का बोध होता है।) इस बीज द्वारा ही भूत, भविष्य तथा वर्तमानरूपी त्रिकाल का ज्ञान होता है।।८।।

गुह्याद्गुह्यतरं सारमुपकारप्रकाशकम् ।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानिनां मस्तकोमणिः ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोधं सत्यप्रत्ययम् ।
आश्चर्यं नास्तिके लोके आधारं आस्तिके जने ।।९।।

समस्त शास्त्रों का सारभूत यह स्वरोदयशास्त्र अत्यंत गोप्य से भी गोप्यतर है। यह उपकार प्रकाशक ज्ञानियों के सिर की मणि के समान माना गया है। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, प्रत्यक्ष अनुभूत है। यह नास्तिकों के लिये अत्यन्त विस्मयजनक तथा आस्तिकों का आश्रय स्वरूप शास्त्र है।।९।।

शान्ते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्तैकमानसे ।
दृढ़चित्ते कृतज्ञे च देवञ्चैव स्वरोदयम् ।।१०।।

शान्त, पवित्र, गुरुभक्तिपरायण, एकाग्र, दृढ़चित्त तथा कृतज्ञ चित्त वालों को इस स्वरोदय शास्त्र का उपदेश देना चाहिये।।१०।।

शठे च दुर्जने शूद्रे अशान्ते गुरुलोपके ।
हीनसत्वे दुराचारे स्वरोदयं न दीयते ।।११।।

शठ, दुर्जन, शूद्र (मोहान्ध), अशान्त चित्तयुक्त, गुरुनिन्दक, मूढ़ तथा असदाचारी को इस शास्त्र का उपदेश कदापि न देना चाहिये।।११।।

श्रणु त्वं कथितं देवि देहस्य ज्ञानमुत्तमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ।।१२।।

हे पार्वती! देह ज्ञान का विस्तृत रूप से वर्णन कर रहा हूं। इसे जानने से सर्वज्ञत्व प्राप्त हो जाता है।।१२।।

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम् ।
स्वरे सर्वञ्च त्रैलोक्यं स्वरे आत्मस्वरूपकः ।।१३।।

वेद, गान्धर्वविद्या (संगीत, नृत्यादि विद्या) तथा अन्य सभी शास्त्र स्वरज्ञान पर ही आधारित हैं। जो अन्य शास्त्रों में है, वह सब स्वर शास्त्र में है। तीनों भुवनों में स्वर शास्त्र विद्यमान है। इसकी कृपा से आत्मस्वरूप ज्ञात हो जाता है।।१३।।

स्वरहीनोऽथ दैवज्ञो नाथहीनो यथा गृहम् ।
शास्त्रहीनो यथा वक्ता शिरोहीनञ्च यद्वपुः ।।१४।।

स्वरज्ञान से रहित दैवज्ञ उसीप्रकार है जैसे स्वामी के बिना घर, शास्त्रज्ञान रहित वक्ता तथा शिर रहित देह!।।१४।।

नाड़ीभेदं यथा प्राणं तत्वभेदं तथैव च ।
सुषुम्नामिश्रभेदञ्च योजानाति स मुक्तिगः ।।१५।।

जैसे प्राण शक्ति(इड़ा-पिंगला)) नाड़ी भेदकारी हैं, उसी प्रकार से एक ही प्राण भिन्न-भिन्न तत्वोदय का कारण है। यही प्राण ही सुषुम्ना रूपी मिश्रभेद (जब दोनों–इड़ा तथा पिंगला में एक साथ प्राण चलता है) का भी कारण है! इस रहस्य को जानने वाले मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं।।१५।।

साकारे वा निराकारे शुभवायुबले कृते ।
कथयन्ति शुभं केचित् स्वरज्ञानं वरानने ।।१६।।
ब्रह्माण्डखण्डपिण्डाद्यं स्वरेणैव हि निर्मितम् ।
सृष्टिसंहारकर्त्ता च स्वरः साक्षान्महेश्वरः ।।१७।।

साकार, निराकार, खण्डपिण्डादि समस्त ब्रह्माण्ड का समुद्भव एकमात्र स्वर से ही होता है। प्राण रूपी स्वर ही सृष्टिलयकारी महेश्वर है॥१६-१७॥

स्वरज्ञानात् परं मित्रं स्वरज्ञानात् परं धनम् ।
स्वरज्ञानात् परं गुह्यं न वा दृष्टं न वा श्रुतम् ।।१८।।

स्वर शास्त्र ही परम मित्र है, यह महान् धनस्वरूप तथा परम गोपनीय है। इसकी तुलना में अन्य कोई श्रेष्ठ मित्र, बन्धु, धन या गुह्यविषय देखा अथवा सुना नहीं गया!॥१८॥

शत्रुं हन्यात् स्वरबलैस्तथा मित्रसमागमः ।
लक्ष्मीप्राप्तिः स्वरबलैः कीर्त्तिः स्वरबलैस्तथा ।।
स्वरबलैर्देवतासिद्धिः स्वरेण क्षितिपोवशः ।
कन्याप्राप्तिः स्वरबलैः स्वरबलै राजदर्शनम् ।
स्वरबलैर्गम्यते देशे भोज्यं स्वरबलैस्तथा ।
लघुदीर्घं स्वरबलैर्मलञ्चैव निवारयेत् ।।
सर्वशास्त्रपुराणादिस्मृतिवेदाङ्गपूर्वकम् ।
स्वरज्ञानात् परं मित्रं नास्ति किञ्चिद्वरानने ।।१९।।

इस शास्त्र के प्रभाव से शत्रुकुल निर्मूल हो जाता है। सुहृदों का साथ मिलता है, लक्ष्मी प्राप्ति होती है। यश उपार्जन होता है। कन्यालाभ, राजदर्शन, राजवशीकरण, देवतासाधन, लघिमा महिमादि सिद्धि, देशभ्रमण, खाद्यसंचय, मल दूरीकरण प्रभृति समस्त कर्म सिद्ध हो जाते हैं। स्वर से ही पुराण-स्मुति-वेदादि की उत्पत्ति होती है। हे पार्वती! स्वरशास्त्र ज्ञान से प्रिय वस्तु इस समस्त संसार में दृष्टिगोचर नहीं होती॥१९॥

नामरूपादिकाः सर्वे मिथ्यां सर्वैकविभ्रमाः ।
अज्ञानमोहिता मूढ़ा यावतत्त्वं न विद्यते ।।२०।।

नामरूपादि सब कुछ भ्रान्तिजनित ही हैं। जब तक व्यक्ति को स्वर तत्व विषयक उपदेश नहीं मिलता, तब तक उसकी मूढ़ता विद्यमान रहती है और तबतक उसका मोहान्धकार दूरीभूत नही हो सकता॥२०॥

इदं स्वरोदयं शास्त्रं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम् ।
आत्मघट प्रकाशार्थं प्रदीपकलिकोपमम् ।।२१।।

स्वरोदयशास्त्र सभी शास्त्रों की तुलना में उत्तम है। जैसे दीपशिखा गृहादि को प्रकाशित करती है, उसीप्रकार यह शास्त्र भी आत्मा का प्रकाशन इस शरीर में ही कर देता है॥२१॥

यस्मै कस्मै परस्मै वा न प्रोक्तं प्रश्नहेतवे ।
तस्मादेतत् स्वरं ज्ञेयमात्मनैवात्मनात्मनि ।।२२।।

हे देवी! इस स्वरोदयशास्त्र को जिस-किसी के समक्ष प्रकाशित करना अनुचित है। अपने अंदर आत्मानुभूति द्वारा अपने स्वरज्ञान को प्राप्त करना होगा।।२२।।

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारग्रहदेवता ।
न विष्टिर्न व्यतीपातो विरुद्धाद्यास्तथैव च ।।
कुयोगो नैव देवेशि प्रभवन्ति कदाचन ।
प्राप्ते स्वरबले सिद्धिं सर्वमेव फलं शुभम् ।।२३।।

हे देवेशी! स्वरज्ञान प्राप्त होने पर अशुभ तिथि, नक्षत्र, राहु आदि ग्रह गण, विष्टिकरण, व्यतीपात आदि कुयोग आदि का विचार नही रह जाता। इस शास्त्र का ज्ञान हो जाने पर, इसकी कृपा से समस्त कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। कोई भी प्रतिबन्धक अथवा विघ्नादि (कार्यनाश करने में) सफल नही हो सकता।।२३।।

नाड़ीज्ञानम्

देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सविस्तराः ।
ज्ञातव्याश्च बुधैर्नित्यं स्वदेहज्ञानहेतवे ।।२४।।

प्राणीशरीर में अनेक नाड़ियां विस्तृत रूप से स्थित हैं। देह विज्ञान आयत्त करने के लिये नाड़ी तत्व का ज्ञान विद्वान व्यक्ति के लिये आवश्यक है।।२४।।

नाभिस्थानककन्दार्द्ध्वमङ्कुरादेव निर्मिताः ।
द्विसप्ततिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः ।।२५।।

नाभिस्थानस्थ कन्द के उपर अंकुर से निकली ७२००० नाड़ियां देह में स्थित हैं।।२५।।

नाड़ीस्था कुण्डली शक्तिर्भुजङ्गाकारशायिनी ।
ततोदशोर्ध्वगा नाड्यो दशैवाधः प्रतिष्ठिताः ।
देहेतिर्यग्गता नाड्यश्चतुर्विंशतिसंख्यया ।
प्रधाना दशनाड्यास्तु दशवायुप्रवाहकाः ।।२६।।

कुण्डलिनी शक्ति नाड़ी चक्रकेन्द्र में स्थित है। वह सर्पाकृति में सोयी हुई है। पूर्वोक्त नाड़ियों के मध्य में १० नाड़ियां उर्ध्व में तथा १० नाड़ियां निम्न भाग में स्थित हैं। और २४ नाड़ियां कुटिलाकृति में शरीर में सर्वत्र व्याप्त होकर अवस्थान कर रही हैं। इन सभी में १० नाड़ियां प्रधान रूप से गिनी जाती हैं। इन १० नाड़ियों में १० प्रकार की वायु बहती है।।२६।।

तिर्यमगूर्ध्व मधस्ताद्वा वायुर्देहसमन्वितः ।
चक्रवन्तु स्थिता देहे सर्वाः प्राणसमाश्रिताः ।।२७।।

जो सब वायु वाहक नाड़ियां देह में स्थित हैं, वे तिर्यक् रूप से उर्ध्वगामिनी तथा निम्नगामिनी होकर देहमध्य में विद्यमान रहकर चक्रकृति में प्राणवायु का अवलम्बन बनकर स्थित हैं॥२७॥

तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्त्र उत्तमाः ।
इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयिका ।।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।
अलम्बुषा कुहुश्चैव शङ्खिनी दशमी तथा ।।२८।।

इन सर्वप्रधान दश नाड़ियों में तीन नाड़ियां श्रेष्ठ हैं। वे हैं– इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना। इन तीन के अतिरिक्त शेष सात का नाम है गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहु तथा शङ्खिनी॥२८॥

इड़ा वामे स्थिता भागे दक्षिणे पिङ्गला तथा ।
सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ।।
दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।
यशस्विनी वामकर्णे आनने चाप्यलम्बुषा ।।
कुहुश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने च शङ्खिनी ।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाड़िकाः ।।२९।।

शरीर के वाम भाग में इड़ा, दाहिनी ओर पिंगला, मध्य में सुषुम्ना, बायीं आंख में गान्धारी, दायीं आंख में हस्तिजिह्वा, दाहिने कान में अलम्बुषा, लिंग में कुहु तथा मूल स्थान में शंखिनी स्थित है॥२९॥

इड़ा पिङ्गला सुषुम्ना च प्राणमार्गसमाश्रिताः ।
एता हि दशनाड्यस्तु देहमध्ये व्यवस्थिताः ।।३०।।

इन सब में इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना ही श्रेष्ठ हैं। ये दसों नाड़ियां प्राणवायु का आश्रय लेकर देह में स्थित हैं। बायीं नासिका में इड़ा, दाहिनी में पिंगला तथा बीच में ब्रह्मद्वार पर्यन्त सुषुम्ना स्थित रहती है॥३०॥

गरुड़ोक्तस्वरज्ञापकग्रंथः

अध्याय २

गरुड़ोक्तस्वरज्ञापकग्रंथः

सूत उवाच

हरेः श्रुत्वा हरो गौरीं देहस्थ ज्ञानमब्रबीत् ।।१।।

महामति सूत नैमिषारण्यवासी ऋषियों से कहते हैं–

हे तापसवृन्द ! महेश्वर ने श्री हरि के मुख से सुनकर देवी पार्वती से देहनिर्णायक स्वरोदयज्ञान का वर्णन किया था, उसे सुनें।।१।।

श्री सदाशिव उवाच–

कुजो वन्ही रविः पृथ्वी शौरीराप: प्रकीर्त्तितः ।
वायुसंस्थः स्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रावभासकः ।।२।।

सदाशिव पार्वती से कहते हैं– जब दाहिने नासारंन्ध्र से श्वास वायु प्रवाहित होती है, तब अग्नि तत्व के अधीश्वर मंगल, पृथ्वीतत्व के अधीश्वर सूर्य, जल के अधीश्वर शनि तथा अनिल (वायु) तत्व के अधीश्वर राहु हो जाते हैं। अर्थात् यह सब दाहिनी नाक से श्वास वायु के प्रवाह काल में होता है।।२।।

गुरुः शुक्रस्तथा सौम्यश्चन्द्रश्चैव चतुर्थकः ।
वामनाड्यान्तु मध्यस्थान् कारयेदात्मनस्तथा ।।३।।

(वामनासिका अर्थात् इड़ा नाड़ी) जब वाम नासिका से श्वास प्रवाहित होती है, तब वन्हि (अग्नि) तत्व के अधीश्वर गुरु, पृथ्वीतत्व के अधीश्वर शुक्र, जलतत्व के अधीश्वर बुध तथा वायुतत्व के अधीश्वर सोम हो जाते हैं।।३।।

यदाचारं इड़ायुक्तस्तदा कर्म समाचरेत् ।
स्थानसेवां तथा ध्यानं वाणिज्यं राजदर्शनम् ।
अन्यानि शुभकर्माणि कारयेत् प्रयत्नतः ।।४।।

जब इड़ा में (वामनासिका में) प्राणवायु का संचार होता रहे तब तीर्थगमन, ध्यान, वाणिज्य व्यवसाय, राजपुरुषों का दर्शन तथा अन्य शुभ कार्य करना चाहिये।।४।।

दक्षनाड़ी प्रवाहे तु शनिभौमश्च सैंहिकः ।
इनश्चैव तथाप्येव पापानामुदयो भवेत् ।।५।।

दाहिने नासारंन्ध्र (पिंगला) से श्वासवायु प्रवाहकाल में सूर्य, मंगल, राहु एवं शनि इन चार पापग्रहों का उदय होता है।।५।।

शुभाशुभविवेको हि ज्ञायते तु स्वरोदयात् ।।६।।

स्वरोदय शास्त्र के ज्ञान से समस्त शुभ एवं अशुभ का ज्ञान हो जाता है।।६।।

देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तृताः ।
नाभेरधस्ताद् य स्कन्दः अङ्कुरास्तत्र निर्गताः ।।७।।
द्विसप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः ।
चक्रवच्च स्थितास्तास्तुसर्वाः प्राणहराः स्मृताः ।।८।।

मनुष्य देह में बहुसंख्यक अनेकरूपों वाली सुविस्तृता नाड़ियां हैं। नाभि के अधोदेश में स्थित मूलाधार से ये समस्त नाड़ियां निकल कर समस्त देह में प्रसारित होती रहती हैं। देह में बहत्तर हजार नाड़ियां स्थित हैं। ये सभी चक्रकृति हैं। इन सब में प्राण की क्रिया चलती रहती है।।७-८।।

तासां मध्ये त्रयः श्रेष्ठा वामदक्षिणमध्यमाः ।।९।।

इन बहत्तर हजार नाड़ियों में से वाम(इड़ा), दक्षिण(पिंगला) तथा मध्यम(सुषुम्ना) रूपी तीन नाड़ियां प्रधान हैं।।९।।

वामा सोमात्मिका प्रोक्ता दक्षिणा रविसन्निभा ।
मध्यमा च भवेदग्निः कथिता कालरूपिणी ।।१०।।

(इड़ा) वामा नाड़ी सोमात्मिका है, दक्षिणा (पिंगला) रवि के समान है। मध्यम को अग्निस्वरूपिणी कहते हैं। इसी को कालरूपिणी भी कहा जाता है।।१०।।

वामा अमृतरूपा च जगदाप्यायने स्थिता ।
दक्षिणा रौद्रभागेन जगच्छोषयते सदा ।।११।।
द्वयोर्वहि तु मृत्युः स्यात् सर्वाकार्यविनाशिनी ।
निर्गमे तु भवेद्वामा प्रवेशे दक्षिणास्मृता ।।१२।।

अमृत, सुधास्वरूपिणी इड़ा नाड़ी देह के वाम भाग का आश्रय लेकर अवस्थित है। इस नाड़ी से ही जगत (देह) का प्रियकर विधायक कार्य होता है। शरीर के भीतर दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी स्थित रहती है। जब इसमें श्वासवायु चलती है तब महाताप प्रवाहित होने लगता है। इससे ही जगत तथा देह का परिशोषण कार्य सम्पादित होता है। जब इड़ा तथा पिंगला, दोनों में ही श्वासप्रवाह चलने लगता है, तब मृत्युवत् स्थिति होने के कारण प्रत्येक कार्य में हानिकर स्थिति आने लगती है। इस स्थिति में शुभ कार्य नहीं

करना चाहिये। इस समय किसी भी शुभ कार्य को करना उचित नही है। इड़ा के द्वारा श्वास बाहर जाती है और पिंगला द्वारा श्वास भीतर प्रवेश करती है॥१२॥

इड़ाचारे तथा सौम्यं चन्द्रसूर्यगतस्तता ।
कारयेत् क्रूरकर्माणि प्राणे पिङ्गलसंस्थिते ।।१३।।

दाहिनी नासिका में प्राण संचार काल में क्रूरकर्म को करना चाहिये और वामनासिका में प्राणसंचार होते समय शुभकर्म का आचरण करना उचित होता है॥१३॥

यात्रायां सर्वकार्येषु विषापहरणे इड़ा ।
भोजने मैथुने युद्धे पिंगला सिद्धिदायिका ।।१४।।

इड़ा नाड़ी में श्वासप्रवाह के समय यात्रा तथा विषापहरण कार्य करें तथा जब पिंगला में श्वास चलती है, तब भोजन, मैथुन तथा युद्ध में प्रवृत्त होने पर सिद्धि मिलती है॥१४॥

उच्चाटमारणाद्येषु कर्मस्वेतेषु पिङ्गला ।
मैथुने चैव संग्रामे भोजने सिद्धिदायिका ।।१५।।

जब पिंगला में वायु प्रवाह होता है, तब मारण, मैथुन, संग्राम इत्यादि कार्य करने से उनमें सफलता मिल जाती है॥१५॥

शोभनेषु च कार्येषु यात्रायां विषकर्मणि ।
शान्तिमुक्त्यर्थसिद्धयै च इड़ा योज्या नाराधिपैः ।।१६।।

शुभक्रिया, यात्रा, विष प्रयोग, शान्तिकर्म, मुक्ति, मनोरथसिद्धि प्रभृति कार्य को करने के लिये वाम नासापुट में प्राण वायु संचारकाल को राजाओं (श्रीमान लोगों) के लिये श्रेयस्कर माना गया है॥१६॥

द्वाम्याञ्चैव प्रवाहे च क्रूरसौम्यविवर्जने ।
विषुवं तत्तु-जानीयात् संस्मरेत्तु विचक्षणः ।।१७।।

जब इड़ा तथा पिंगला में (वाम एवं दक्षिणनासापुटों में) एक साथ ही प्राणवायु बहती हो, उस समय विद्वान, चतुर व्यक्ति को यह चाहिये कि सभी कार्य छोड़कर ईश्वर का ध्यान करे। यह सुषुम्ना का लक्षण है॥१७॥

सौम्यादिशुभकार्येषु लाभादिजयजीविते ।
गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता ।।१८।।

प्रीतिकर उत्सव आदि शुभ कार्य, जय, आयु बढ़ाने वाले कार्य तथा आवागमन कार्य को वाम नाड़ी में प्राणप्रवाह काल में करें॥१८॥

युद्धादिभोजने घाते स्त्रीणाञ्चैव तु सङ्गमे ।
प्रशस्ता दंक्षिणा नाड़ी प्रवेशे रूद्रकर्मणि ।।१९।।

युद्ध, भोजन, किसी जीव पर प्रहार, मैथुन, युद्ध आदि क्रूर कर्म को करने के लिये उचित समय तब है जब दाहिने नासारंन्ध्र में प्राण का प्रवाह होता रहे।।१९।।

शुभाशुभानि कार्याणि लाभालाभौजयाजयौ ।
जीवो जीवाय यत् पृच्छेत् न सिद्धयति च मध्यमा ।।२०।।

अपने या किसी अन्य के सम्बन्ध में शुभाशुभ कार्य, लाभालाभ, जयपराजय प्रभृति के प्रश्न का सुषुम्ना में प्राण बहते समय (जब दोनो नासापुटों में एक साथ प्राण बहे) यह उत्तर होगा कि चाहे कितना अधिक प्रयत्न क्यों न किया जाये कार्यसिद्धि नहीं होगी।।२०।।

वामाचारेऽथवा दक्षे प्रत्यये यत्र नायकः ।
तनुस्थः पृच्छते यस्तु तत्र सिद्धिर्न संशयः ।।२१।।
वैच्छन्दो वामदेवस्तु यदा वहति चात्मनि ।
तत्र भागे स्थितः पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला ।।२२।।

बायें नासापुट अथवा दाहिने नासापुट में श्वास प्रवाह भीतर जाये उस काल में उस प्रश्न करने पर वह सफल होगा, यह निश्चित है। और जब बायें अथवा दाहिने नासापुटों से श्वास बाहर आती है, उस समय प्रश्न करने पर उसका उत्तर असफलता युक्त ही होगा।।२१-२२।।

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवा ।
घोरे घोराणि कार्याणि सौम्ये सौम्यकराणि च ।।२३।।
प्रस्थिते भागतो हंसे द्वाभ्यां वै सर्ववाहिनि ।
तदा मृत्युं विजानीयाद्योगी योगविशारदः ।।२४।।

जब वामनासिका अथवा दाहिनी नासिका से श्वास प्रवाहित हो तब क्रूर ग्रहोदय के कारण क्रूरकर्म तथा शुभग्रह के उदय से शुभकर्म कहा गया है। जब सर्ववाही प्राण विभक्त होकर दोनो नाड़ियों में समरूप से प्रवाहित होने लगता है, तब युक्त योगी इसे मृत्यु श्वास कहते हैं अर्थात् इस स्थिति में कोई कार्य करने से मृत्युतुल्य स्थिति आ जाती है। यहां ऊपर वाम नासिका तथा दाहिनी नासिका एवं क्रूरग्रहोदय का उल्लेख है।

इसका समाधान इसप्रकार से जानना चाहिये।

जब दाहिनी नासिका से प्राण प्रवाहित होता है तब मंगल, राहु, सूर्य तथा शनिरूपी क्रूरग्रहों का उदय होता है। इस स्थिति में प्रश्न का उत्तर क्रूरकर्म जानना चाहिये।

जब वाम नासिका से प्राणप्रवाह हो तब गुरु, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा रूपी शुभग्रह का उदय होता है। इस स्थिति में प्रश्न का उत्तर शुभकर्म जानना चाहिये।।२३-२४।।

यत्र यत्र स्थितः पृच्छेद्वामदक्षिणसंमुखः ।
तत्र तत्र समं दिश्याद्वातस्योदयनं सदा ।
अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।।२५।।
वामेन वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा ।
जीवो जीवति जीवेन यच्छून्यं तत्स्वरो भवेत् ।।२६।।

प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करने वाले के बायें, दाहिने अथवा सामने बैठ कर प्रश्न करता है। उस समय जिस नाड़ी (नासिका) से श्वास बाहर आती है, पहले उसका सन्धान कर लेना चाहिये। जब बायें नासिका छिद्र से श्वास बाहर आती है, उस स्थिति में यदि प्रश्नकर्त्ता व्यक्ति योगी के सामने अथवा बायी ओर रह कर प्रश्न करता है, तब निःसंदिग्ध रूप से शुभ फल होगा। जब दाहिने नासिका छिद्र से श्वास बाहर आती रहती है, तब दाहिनी ओर से अथवा पीछे की ओर रहकर जो प्रश्नकर्त्ता प्रश्न पूछ रहा होता है, उस की भी कार्यसिद्धि होगी। इसका कारण यह है कि व्यक्ति श्वासवायु से ही जीवित है। अतः जो नासिका छिद्र अभी श्वासरहित है, वही पुनः श्वास वायु से पूर्ण हो जाता है। अर्थात् जिस नासिका से श्वास बाहर निकलती है, पुनः उसी से श्वास भीतर भी जाती है।।२५-३६।।

यत्किञ्चित् कार्यमुद्दिष्टं जयादिशुभलक्षणम् ।
तत्सर्वं पूर्णनाड्यन्तु जायते निर्विकल्पतः ।।२७।।

पूर्ण अन्तः (भीतरी) श्वासयुक्तनाड़ी स्थिति में जयादि शुभकार्य के लिये प्रश्न करने पर उस प्रश्न का फल शुभ होता है। उस समय किसी भी कार्य को बिना विघ्न बाधा के सम्पन्न किया जा सकता है।।२७।।

वामाचारेसमो वायुर्जायते कर्मसिद्धिदः ।
प्रवृत्ते दक्षिणं मार्गे विषमे विषमाक्षरम् ।।२८।।

जब बायीं नासिका से वायु प्रवाह काल में प्रश्न के वर्णों के अक्षर सम संख्यात्मक हों अर्थात् जब प्रश्न करने वाला प्रश्न करे तब योगी की बायीं नासिका से वायु संचार हो रहा हो, उस स्थिति में प्रश्न के अक्षर वर्ण की संख्या यदि २ से कटने वाली हो, तब प्रश्न का उत्तर यह होगा कि कार्यसिद्धि होगी।

योगी की दाहिनी नासिका से वायु प्रवाहकाल में प्रश्नकर्त्ता द्वारा प्रश्न करने पर यदि प्रश्न के अक्षर वर्ण की संख्या विषम हो (२ से न कटे) तब क्रूर कर्म में सिद्धि प्राप्त होगी।।२८।।

अन्यत्र वामवाहे तु नाम वै विषमाक्षरम् ।
तदासौ जयमाप्नोति योधः संग्राममध्यतः ।।२९।।
दक्षवातप्रवाहे तु यदि नाम समाक्षरम् ।
जायते नात्र सन्देहो नाड़ीमध्ये तु लक्षयेत् ।
पिङ्गलान्तर्गते प्राणे शमनीयाहवञ्जयेत् ।।३०।।
यावन्नाड्योदयं चारस्तां दिशं यावदापयेत् ।
न दातुं जायते सोऽपि नात्र कार्या विचारणा ।।३१।।

यदि योद्धा रण में बायीं नासिका से प्राण प्रवाहकाल में प्रश्न करता है, तब नाम का अक्षर यदि विषम संख्यक हो तब वह अवश्य जय प्राप्त करेगा। इसी प्रकार यदि दाहिनी नासिका से प्राण प्रवाह के समय योद्धा द्वारा प्रश्न किया जाता है और उसका नाम तथा प्रश्न दोनों सम संख्यक हैं, तब भी वह जयी ही होगा। अतः नाड़ी (नासिका) के श्वास प्रवाह पर ध्यान रखना चाहिये। इसी प्रकार पिंगला नाड़ी में श्वास प्रवाहकाल में प्रश्न करने पर युद्ध में संधि की संभावना रहती है।।२९-३१।।

अथ संग्राममध्ये तु यत्र नाड़ी सदा वहेत् ।
सा दिशा जयमाप्नोति शून्ये भङ्ग विनिर्दिशेत् ।।३२।।
जातचारे जयं विद्यान्मृतके मृतमादिशेत् ।
जयं पराजयं चैव यो जानाति स पण्डितः ।।३३।।

संग्राम भूमि में किसी के द्वारा प्रश्न करने पर जिस नासिकारंन्ध्र से उस समय श्वास चलती रहे उस दिशा में जयलाभ होता है और उससे विपरीत दिशा में पराजय प्राप्त होती है।।३२-३३।।

जब सुषुम्ना में श्वास चले अर्थात् दोनो नासारंन्ध्रों से प्राण प्रवाह होता रहे उससमय प्रश्नकर्त्ता के लिये मृत्युतुल्य कष्ट होगा। इस प्रकार से जो जय पराजय का ज्ञान करता है, वह पण्डित है।।३२-३३।।

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सञ्चरते शिवम् ।
कृत्वा तत्पादमाप्नोति यात्रा सततशोभना ।।३४।।

जब जिस नासारंन्ध्र से श्वास चल रही हो, उस समय यात्रा के लिये उसी ओर का पैर बढ़ाना चाहिये। यदि वाम नासारंन्ध्र से श्वास चल रही हो तब वाम पैर पहले बढ़ाना चाहिये, अथवा दक्षिण नासारंन्ध्र से श्वास चल रही हो, तब दाहिना पैर पहले बढ़ाना चाहिये।।३४।।

शशिसूर्यप्रवाहे तु सति युद्धं समाचरेत् ।
तत्रस्थः पूज्यते यस्तु स साधुर्जयते ध्रुवम् ।।३५।।

यदि वाम(चन्द्र) अथवा दाहिनी(सूर्य) में से कोई भी श्वास चल रही हो, तब भी युद्ध में लगा जा सकता है।

अर्थात् जिस नाड़ी से श्वास चल रही हो उसी ओर प्रवाहस्थ होने पर वह व्यक्ति अवश्य विजयी होगा।।३५।।

यां दिशं वहते वायुस्तां दिशं यावदापयेत् ।
जयते नात्र सन्देह इन्द्रो यद्यग्रतः स्थितः ।।३६।।

जिस नासापुट से श्वास प्रवाहित हो रही हो, उस ओर से संग्राम संबंधित प्रश्न करने वाला अवश्य जयी होगा। यदि स्वयं इन्द्र भी उससे आगे आकर युद्ध करें तब भी उसे परास्त नही कर सकते।।३५।।

मेषाद्या द्वादशा नाड्यो दक्षिणा वामसंस्थिताः ।
चरंस्थिरद्विमार्गे ता स्तादृशे तादृशः क्रमात् ।।३७।।

वाम तथा दक्षिणभाग में क्रमशः मेषादि द्वादश राशियों का उदय होता है तथा उनकी चर, स्थिर तथा द्वयात्मक स्थिति का विचार करके प्रश्न के फलाफल का निर्णय होता है। अर्थात् प्रत्येक नाड़ी में अढ़ाई दण्ड(एक होरा) श्वासप्रवाह का स्वाभाविक समय होता है। अतः दिन एवं रात्रि में प्रत्येक नाड़ी के श्वासोदय द्वारा क्रमशः मेष, वृष, आदि बारह राशियों के अनुसार बारह नाड़ियों का उदय होता है। जब एक नासिका रंन्ध्र से वायुप्रवाह बंद होकर दूसरे नासिकारंन्ध्र से प्रारंभ होता है, तब वह चर मार्ग है।

जब एक ही नासिका रंन्ध्र में स्थिर रूप से श्वास चलती रहती है, तब यही स्थिर मा
है। जब यह ज्ञात नही हो पाता कि किस नासिका से प्रवाह होरहा है, सब कुछ स्पष्ट नह
रहता, तब इसे द्विमार्ग कहते हैं। इसी प्रकार मेषादि राशि का चर, स्थिर तथा द्वयात्म
प्रश्न निरूपण करके नियमानुसार फल कहना चाहिये।।३७।।

निर्गमे निर्गमं याति संग्रहे संग्रहं विदुः ।
पृच्छकस्य वचः श्रुत्वा तत्र सिद्धिञ्च लक्षयेत् ।।३८।।

निर्गम में निर्गम अर्थात् व्यय प्रदान अथवा ह्रास तथा संग्रह में संग्रह अर्थात् आव
इसका अर्थ यह है कि प्रश्नकर्त्ता जब प्रश्न करता है यदि उस समय इड़ा से प्राण बाहर ज
रहा है तब अन्तरस्थ शान्त एवं अमृत भाग का और यदि उस समय प्राण पिंगला से बा
जा रहा है उस समय अन्तरस्थ विषभाग का बहिर्गमन अथवा ह्रास होता रहता है।

पहले १२वें श्लोक में श्वास बाहर जाते समय वामा नाड़ी को और श्वास
अन्दर जाते समय दक्षिणा नाड़ी को अशुभ फलप्रद कहा गया है। यहां भी उसीप्रकार व
वर्णन है। वस्तुतः सभी कार्य में उक्त १२ वें श्लोक के अनुसार ही फल होगा, ऐ
नहीं है। वह केवल एक सामान्य नियम है जो सौम्य तथा क्रूर के विषय से सम्बन्धि
है। विशेष नियम को युक्ति एवं विचार द्वारा जाना जाता है। इसीलिये स्वयं को शा
प्रदान करने में इड़ा से वायु निर्गम(वायु बाहर जाना) तथा दूसरे कें कष्ट को जानने
सम्बन्ध में पिंगला का वायु प्रवेशकाल हानिकर होता है। विषहरण तथा रोग आ
निवारणार्थ इड़ा से प्राण बाहर जाते समय उपाय करना फलप्रद होता है। जब पिंग
से प्राण बाहर जा रहा हो तब विषहरण अथवा रोगनिवारण कार्य असफल होता है
अतः पिंगला से जब प्राण बाहर जा रहा हो, तब वह ताप दायक है और जब भीतर
रहा हो तब वह ताप विमोचक है। इसलिये पिंगला के श्वासवहन के समय रोगी क
चिकित्सा तथा सुश्रूषा में लगने पर यह ज्ञात रखना चाहिये किं जब पिंगला से प्रा
बाहर जा रहा होता है तब उस समय चिकित्सक की देह में स्थित विष रोगी के देह
संक्रमित हो जाता है। जब पिंगला से प्राण भीतर जा रहा होता है, तब रोगी के देह क
विष चिकित्सा करने वाले की देह में आ जाता है। आत्मीय तथा बन्धुजन जब एकत्र हो
उस समय पिंगला से श्वास का बाहर जाना कदापि उचित नही है। क्योंकि इससे अप
ताप उन लोगों में चला जाता है। इसलिये श्वास परिवर्तन की सिद्धि करना उचि
है।।३८।।

वामे वा दक्षिणे वापि पञ्चतत्वोदयः शिवे ।
उर्ध्वोऽग्निरध आपश्च तिर्यक्संस्थः प्रभञ्जनः ।
मध्ये तु पृथ्वी ज्ञेया नभः सर्वत्र सर्वदा ।।३९।।

हे शिवे! दोनों नासिकाओं से पंचतत्व उदित होता है। नासापुटद्वय(दानों नासिकाओं के छिद्र) के उर्ध्वभाग का स्पर्श करके प्रवाहित होने पर यह जानना चाहिये कि अग्नितत्व का उदय हुआ है। नासिका के छिद्रों के निचले भाग का स्पर्श करके जब वायु प्रवाहित हो तब जलतत्व का उदय होता है। नासिका छिद्रो के पार्श्वभाग का स्पर्श करके वायु प्रवाहित होने पर वायु तत्व का उदय जानना चाहिये। नासिका छिद्रो के मध्य का भाग स्पर्श करके वायु प्रवाह होने पर पृथ्वी तत्व का उदयकाल होता है। जब नासिका छिद्रों के सभी उर्ध्व, अधः, पार्श्व एवं मध्य का स्पर्श करके वायु का प्रवाह होने लगे, तब आकाशतत्व का उदयकाल जानना चाहिये।।३९।।

उर्ध्वेमृत्युरधः शान्तिः स्तिर्यक् चोच्चाटयेत् सुधीः ।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्मोक्षः सर्वत्र सर्वगे ।।४०।।

मारण कर्म वन्हि तत्व के काल में करें। शान्ति कार्य को जलतत्वोदय काल में करना चाहिये। उच्चाटन कार्य में वायुतत्वोदय काल प्रशस्त है। स्तम्भन के लिये पृथ्वीतत्व उदयकाल को अच्छा माना गया है। मोक्षकार्य को आकाशतत्वोदय काल में करना चाहिये।।४०।।

नाड़ीज्ञानम्

अध्याय ३

नाड़ीज्ञानम्

सदाशिव उवाच–

नामानि नाड़िकानान्तु वातानां प्रवदाम्यहम् ।
प्राणोऽपानः समानश्चोदानोव्यानस्तथैव च ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्त धनञ्जयः ।।१।।

सदाशिव कहते हैं– नाड़ी समूह का वर्णन किया जा चुका। अब प्राण वायु के सम्बंध में कहता हूं। प्राणवायु १० हैं, जिनके नाम है प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय॥१॥

हृदि प्राणो वहेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ।
समानो नाभिदेशे च उदानः कण्ठमध्यगः ।
व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधानाः पञ्चवायवः ।।२।।
प्राणाद्या पञ्च विख्याता नागाद्या पञ्चवायवः ।।३।।

प्राण हृदय में, अपान गुह्यदेश में, नाभि में समान, कण्ठ में उदान तथा समस्त शरीर में व्यान व्याप्त है। ये पांच वायु ही सर्वप्रधान हैं। इसके अतिरिक्त नाग-कूर्म-कृकर-देवदत्त तथा धनञ्जय के संबंध में आगे कहा जा रहा है॥२-३॥

(आयुर्वेद का कथन है कि नासिका से खींची गयी जो वायु नाभिग्रंथि तक जाती है, वह है प्राणवायु। जो वायु योनिदेश से लेकर नाभिग्रंथि पर्यन्त अधोभाग में चलती रहती है, वह है अपानवायु। जब नासिका से खींची प्राणवायु नाभिदेश में पहुंचती है, तब अपान योनिस्थान से आकृष्ट होकर नाभिमण्डल के अधोदेश में स्फीत होता है। प्राण वायु ही अपान वायु का तथा अपान वायु ही प्राणवायु का आकर्षण करता है। इन दोनों की इस प्रकार की प्रक्रिया से ही जीवन रक्षा होती है। जब दोनो वायु नाभिग्रंथि का भेदन करके एकसाथ मिलकर चलने लगते हैं, तब देह त्याग(मृत्यु) का समय आ जाता है इसका नाम है नाभि श्वास।)

तेषामपि च पञ्चानां कर्माणि च वदाम्यहम् ।
उद्‌गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।
कृकरः क्षुत्कृतोज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।।४।।
न जहाति मृते क्वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ।
एते नाड़ीषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ।।५।।

उद्गार में नागवायु, उन्मीलन में कूर्म, हंसते समय कृकर, जंमाई लेने में देवदत्त तथा समस्त देह में धनंजय वायु का प्रवाह चलता है। प्राण के देह त्याग के समय भी धनंजय वायु देह का त्याग नहीं करती। ये वायु जीवन रूपी होकर समस्त नाड़ियों में प्रवाहित रहते हैं।।४-५।।

प्रकटप्राणसंचारं लक्षयेत् देहमध्यतः ।
पिङ्गलेडासुषुम्नाभिर्नाड़िभिस्तिसृभिर्बुधः ।।६।।

इड़ादि नाड़ीत्रय से शरीर में किसप्रकार से वायु का गमनागमन होता है, इसे बुद्धिमान व्यक्ति सम्यक् रूप से जान सकते हैं।।६।।

इड़ा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
इड़ानाड़ीस्थिता वामा ततो व्यस्ता च पिङ्गला ।।७।।

मानव देह के वाम भाग में इड़ा तथा दक्षिण भाग में पिंगला विद्यमान है। अतः इड़ा को वामा तथा पिंगला को दक्षिणा कहा जाता है।।७।।

इड़ायां संस्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायाञ्च भास्करः ।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुर्हंसस्वरूपकः ।।८।।

इड़ा में चन्द्रमा तथा पिंगला मे सूर्य का अवस्थान रहता है। जो नाड़ी ब्रह्मरंध्र पर्यन्त गमन करती है और जो मेरुदण्ड के अन्तर्गत मध्य भाग में है, उसी सुषुम्ना में हंस (जीवात्मारूपी शंभु) निवास करते हैं।।८।।

हंकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारन्तु प्रवेशने ।
हंकार शिवरूपेण सकारः शक्तिरूच्यते ।।९।।

श्वास अंदर लेते समय "हं" और बाहर निकलते समय "सः" का उच्चारण होता है। (यह उच्चारण वायु द्वारा ही होता है।) "हं" शिवरूपी तथा "सः" शक्तिरूपी कहा जाता है। अतः हंस शब्द को प्रकृति (शक्ति) तथा पुरुषात्मक (शिव) समझो।।९।।

शक्तिरूपस्थितश्चन्द्रो वामनाड़ीप्रवाहकः ।
दक्षनाड़ीप्रवाहश्च शम्भुरूपी दिवाकरः ।।१०।।

वाम नाड़ी (इड़ा) में शक्तिरूपी चन्द्र तथा दक्षिण (पिंगला) नाड़ी में शिवरूपी सूर्य प्रवाहित है। अर्थात् शक्तिरूप से द्विदल (आज्ञाचक्र) के ऊपर (सोमचक्रस्थ) चन्द्र के अमृतक्षरण से प्राणवायु भारी होकर अधोगामी होता है। वाम नाड़ी प्रवाह इसी से प्रारंभ

होने लगता है। शंभूरूप से (सूर्यरूप से) मूलाधारस्थ सूर्य ताप प्रदान कर अपान वायु को हल्का कर देता है, जिससे वह पिंगला के पथ से उर्ध्वगामी होकर पिंगला में प्रवाहित होने लगता है॥१०॥

इड़ापिङ्गलाप्रवाहफलानि

श्वासे सकारसंस्थे तु यद्दानं दीयते बुधैः ।
तद्दानं जीवलोकेऽस्मिन् कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥११॥

जब श्वासवायु अन्दर प्रवेश करे तब वह श्वास है। श्वासवायु अन्दर प्रवेश करते समय जो दान दिया जाता है, वह कोटिगुणित फलप्रद हो जाता है॥११॥

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्तः समाहितः ।
सर्वमेव विजानीयान्मार्गं तच्चन्द्रसूर्ययोः ॥१२॥

योगी को एकाग्रचित्त तथा समाहित होकर ज्ञान बल से इड़ा-पिंगला के प्रवाहित होने को समझना चाहिये जिससे सबकुछ ज्ञात हो जाता है॥१२॥

ध्यायेतत्त्वं स्थिरे जीवे अस्थिरेण कदाचन ।
इष्टिसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥१३॥

श्वास की स्थिरता(कुंभक) के समय प्राणी को पंचतत्व का चिन्तन करना चाहिये। स्वर की अस्थिरता के समय (रेचक तथा पूरक के समय) पंचतत्व की भावना नहीं की जा सकती। स्वरशास्त्र में निपुणता मिलने से अभीष्ट कार्य तथा महालाभ दोनो सिद्ध हो जाते हैं। इसकी कृपा से सर्वत्र जयलाभ होता है॥१३॥

चन्द्रसूर्यौ यदभ्यासौ ये कुर्वन्ति सदा नराः ।
अतीतानागतज्ञानं तेषां हस्तगतं सदा ॥१४॥

इड़ा चन्द्र और पिंगला सूर्य है। सर्वदा इनका अभ्यास करने से भूत-भविष्यात्मक त्रिकाल का ज्ञान हो सकता है॥१४॥

वामे चामृतरूपस्था जगदाप्यायिनी परा ।
दक्षिणा चरमे भागे जगदुत्पादयेत् सदा ।
मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टं सर्वत्र कर्मसु ॥१५॥

बायीं ओर अमृतरूप से संस्थित इड़ाप्रवाह जगत के लिये प्रीतिकर तथा पालनकर्त्ता है। दक्षिणनाड़ी प्रवाह के चरम भाग में (अंतिम बिंदु में) निर्गमनकाल में (जब श्वास

बाहर जाये) जगत् की उत्पत्ति करता है। अतः दक्षिणनाड़ी प्रवाह (पिंगला प्रवाह) भी सांसारिक कार्य हेतु फलकारी है। मध्यम प्रवाह (सुषुम्ना प्रवाह) सांसारिक कार्य हेतु सदा व्यर्थ है। अतः सुषुम्ना प्रवाह के समय कदापि सांसारिक कार्य में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये।।१५।।

सर्वत्र शुभकार्येषु वामा भवति पुष्टिदा ।
निर्गमे च शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा ।
शुभकार्ये शुभा वामा दक्षिणा क्रूरकर्मसु ।।१६।।

समस्त शुभकार्य हेतु इड़ा नाड़ी पुष्टिदायिका है। श्वास बाहर जाते समय इड़ा अशुभ हो जाती है और श्वास अंदर जाते समय पिंगला शुभ हो जाती है। जब इड़ा से श्वास अन्दर जाती है उस समय शुभकर्म में लगने से फल मिलता है। जब पिंगला से श्वास कार्य होता है उस समय क्रूरकर्म में प्रवृत्त होना चाहिये।।१६।।

चन्द्र समस्त विज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा ।
चन्द्र स्त्री पुरुषः सूर्यश्चन्द्रो गौरोरविः सितः ।।१७।।

चन्द्र को सम तथा सूर्य को विषम कहा जाता है। चन्द्र नाड़ी रमणी(स्त्री) है। सूर्य नाड़ी को पुरुष कहा गया है। चन्द्र का वर्ण गौर है और सूर्य का वर्ण श्वेत है।।१७।।

पिङ्गलेड़ा सुषुम्ना च तिस्त्रोनाड्यः प्रकीर्त्तिताः ।
इड़ायाश्च प्रवाहेण सौम्यकर्मणि कारयेत् ।
पिङ्गलाया प्रवाहेण रौद्रकर्मणि कारयेत् ।
सुषुम्नायाः प्रवाहेण सिद्धिमुक्तिफलानि च ।।१८।।

इड़ा-पिंगला तथा सुषुम्ना को श्रेष्ठ नाड़ी कहा गया है। इड़ा में श्वास बहते समय शुभकार्य करे तथा पिंगला में श्वासप्रवाह काल में क्रूरकर्म सम्पन्न करना चाहिये। सुषुम्ना श्वासप्रवाह काल में सिद्धिप्रद तथा मोक्षप्रद कार्य करे।।१८।।

आदौ चन्द्र सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे ।
प्रतिपत्तोदिनान्याहु स्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये ।।१९।।

शुक्लपक्षीय प्रतिपदा से तीन तीन दिन वामनासा से तथा कृष्णपक्षीय प्रतिपदा से तीन तीन दिन दक्षिण नासा से क्रमशः श्वास का उदय होता है। अर्थात् शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से प्रारंभ करके तीन दिन इड़ा तदनन्तर तीन दिन पिंगला का तदनन्तर तीन

दिन इड़ा से, इस प्रकार से पूर्णिमा तक श्वासोदय होता है। इसीप्रकार कृष्णपक्ष के प्रारंभ से प्रथम तीन दिन पिंगला का अगले तीन दिन इड़ा का, इस प्रकार से अमावस्या पर्यन्त श्वासोदय होता है। यह साधारण नियम है॥२०॥

सार्द्धद्विघटिका ज्ञेया शुक्ले कृष्णे शशी रविः ।
वहत्येकदिनेनैव यथायष्टिघटिक्रमात् ।।२१।।

शुक्लपक्षीय अहोरात्र (रात दिन) के ६० दण्ड में से वामनासिका से २½ दण्ड श्वासोदय होता है। कृष्णपक्ष के रातदिन के ६० दण्डों में से दाहिनी नासिका से२½-२½ दण्ड का श्वासोदय होता है। (अर्थात् प्रत्येक २½दण्ड में एक-एक नाड़ी की श्वास बदलती है)॥२१॥

वहेत्तावद्घटीमध्ये पञ्चतत्वानि निर्दिशेत् ।
प्रतिपत्तोदिनान्याहुर्विपरीते विपर्ययः ।।२२।।

२½दण्डव्यापी श्वास प्रवाहकाल में पृथ्वी आदि पंचतत्वों का उदय क्रमशः होता है। प्रतिपदा से प्रारंभ करके इस प्रकार प्रत्येक दिन का नियम जानलेना चाहिये जो श्लोक २१ में अंकित है। इस नियम से विपरीत हो जाने पर विपरीत फल होता है॥२२॥

शुक्लपक्षे वहेद्वामा कृष्णपक्षे च दक्षिणा ।
जानीयात् प्रतिपत्पूर्वं योगी तद्गततमानसः ।।२३।।

इड़ानाड़ी शुक्लपक्ष में तथा पिंगला कृष्णपक्ष में प्रवाहित होती है। जो योगी हैं वे प्रतिपदा प्रभृति तिथि के पूर्व ही इस विषय को सयत्न समझ लें॥२३॥

उदयश्चन्द्रमार्गेण सूर्येणास्तंगतो यदि ।
ददाति गुणसंघातं विपरीते विपर्ययः ।।२४।।

तिथि के अनुसार वाम नासा छिद्र से स्वर का उदय होने तथा दक्षिण नासाछिद्र से स्वर का अस्तगमन(अन्दर जाने) होने से नानाप्रकार के गुणजनक शुभफल की उत्पत्ति होती है। इसके विपरीत होने पर अशुभफल होता है॥२४॥

शशाङ्कं चारयेद्रात्रौ दिवाचार्य्यो दिवाकरः ।
इत्यभ्यासे रतो योगी स योगी नात्र संशयः ।।२५।।

रात में चन्द्र नाड़ी (इड़ा) से तथा दिन में सूर्यनाड़ी से (पिंगला से) श्वास प्रवाह

जारी रखना उचित है। जो इस प्रकार के अभ्यास में रत हैं, वे ही योगी हैं। दिन में उष्णता होती है, अत: उस समय चन्द्र का शीतल प्रवाह जारी रखना चाहिये। रात्रि में शीतलता होती है अत: रात्रि में सूर्य का उष्णप्रवाह जारी रखना चाहिये।।२५।।

सूर्येण वध्यते सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रेण वध्यते ।
यो जानाति क्रियामेता त्रैलोक्यं जयते क्षणात् ।।२६।।

दिन में पिंगला नाड़ी को बंद करे अर्थात् वाम नासिका से प्राण का चालन करे। रात्रि में इड़ा नाड़ी बन्द करे अर्थात् पिंगला से प्राण का चालन करे। जो इस प्रक्रिया अभ्यास करते हैं वे क्षण में ही त्रिभुवन जयी हो जाते हैं। (ऐसे लोगों के शरीर में पीड़ा नहीं होती और नित्य चेतना की भी वृद्धि होने लगती है। दिन में पुरानी रुई से दाहिनी नासिका बन्द करें। केवल वामनासिका से प्राण चालन हो। इसीप्रकार रात्रि में वामनासिका को रुई से बन्द करें ताकि दक्षिण नासिका से प्राणचालन हो। कुछ समय अभ्यास के पश्चात् रुई लगाना आवश्यक नही होता और यह क्रम स्वभाविक हो जाता है)।।२६।।

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाड़िका ।
सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्लपक्षे विशेषतः ।।२७।।

सोम, बुध, बृहस्पति तथा शुक्रवार को सभी कार्य में इड़ा नाड़ी शुभकारी है। अर्थात् यदि इन दिनों में वाम नासिका से श्वास बहती है, तब उस समय शुभकार्य करना चाहिये। इससे इष्ट सिद्धि होती है। इड़ा नाड़ी शुक्लपक्ष में अधिक फलप्रदा है।।२७।।

अर्काङ्गारकसौरीणां वासरे दक्षनाड़िका ।
स्मर्न्तष्या चरकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः ।।२८।।

शनि, मंगल तथा रवि को पिंगलानाड़ी सिद्धिप्रदा है। पिंगलानाड़ी कृष्णपक्ष में विशेष फलप्रदा है। पिंगला = दाहिनी नासिका।।२८।।

क्रमादिकैकनाड्यान्तु तत्वानां पृथगुद्भवः ।
अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादशसंक्रमाः ।।२९।।

प्रत्येक नाड़ी में क्रमश: (२१/२-२१/२ दण्डक्रम से) जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी तथा गगन तत्व का उदय होता है। दिनरात के ६० दण्ड में इनका बारह-बारह बार क्रमश: संचार होता है।।२९।।

वृषकर्कटकन्यालिमृगमीने निशाकरः ।
मेषसिंहे च धनुषि तुलायां मिथुने घटे ।
उदयोदक्षिणे ज्ञेयः शुभाशुभविनिर्णयः ।।३०।।

(गोचर से) वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन राशियों के उदयकाल में वामनाड़ी में पंचतत्वों का उदय होता है और मेष, सिंह, धनु, तुला, मिथुन तथा कुंभ राशि के उदयकाल में दक्षिण नासिका में पंचतत्वों का उदय होता है। इसप्रकार से शुभाशुभ फलों का निर्णय किया जाता है।।३०।।

तिष्ठेत् पूर्वोत्तर चन्द्रः सूर्योदक्षिणपश्चिमे ।
वामाचार प्रवाहेण न गच्छेत् पूर्वउत्तरे ।
दक्षनाड़ी प्रवाहे तु न गच्छेत् याम्यपश्चिमे ।।३१।।
परिपस्थिमयं तस्य मतोऽसौ न निवर्त्तते ।
तस्मात्तत्र न गंतव्यं बुधैः सर्वहितेप्सुभिः ।
तदा तत्र तु संघातमृत्युरेव न संशयः ।।३२।।

पूर्वोत्तर में चन्द्र तथा दक्षिण पश्चिम में सूर्य स्थित रहते हैं। अर्थात् इड़ा पूर्व तथा उत्तर एवं पिंगला दक्षिण तथा पश्चिम की अधिपति है। इसलिये जब वाम नासिका से प्राण प्रवाह होता रहता है तब पूर्व तथा उत्तर दिशा की यात्रा करना उचित नहीं है। इसी प्रकार दाहिनी नासिका छिद्र से प्राणप्रवाह होते समय दक्षिण तथा पश्चिम दिशा की यात्रा निषिद्ध है। निषिद्ध समय में निषिद्ध दिशा में यात्रा से शत्रुभय संभावित हो जाता है। ऐसी स्थिति में घर वापस लौटना भी कठिन हो जाता है।।३१-३२।।

सूर्योदये यदा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रोदये यदा ।
सिध्यन्ति सर्वकार्याणि दिवारात्रिगतान्यपि ।।३३।।

यदि निर्दिष्ट समय में सूर्यनाड़ी अथवा चन्द्र नाड़ी से श्वास प्रवाहित होती है, तब उसी के अनुसार निर्दिष्ट कर्म में लग जाना चाहिये।।३३।।

शुक्लपक्षे द्वितियायामर्के वहति चन्द्रमाः ।
दृश्यते लाभादःपुसां सोमे सौख्यं प्रजायते ।।३४।।

शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि के रविवार को वामनासिका से प्राणप्रवाह होने पर उसी समय जिस कार्य का अनुष्ठान किया जाता है, वह लाभप्रद होता है। इस प्रकार

शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि के सोमवार को इड़ा (वामनाड़ी) में श्वास प्रवाह होने पर कोई कार्य (सौम्य कार्य) करने से व्यक्ति सुखी हो जाता है॥३४॥

चन्द्रकाले यदा सूर्यः सूर्यश्चन्द्रोदये भवेत् ।
उद्वेगः कलहोहानिः शुभं सर्वं निवारयेत् ।।३५।।

ऊपर वामनासिका से प्राणप्रवाह वाले निश्चित किये गये समय में यदि दक्षिण नासिका से प्राणप्रवाह होता है अथवा दक्षिण नासिका से प्राणप्रवाह वाले निश्चित समय में वाम नासिका से प्राण प्रवाह होता है, उस समय उसके विपरीत कार्य को करने से उद्वेग, कलह, क्षति होती है और शुभ कार्य बाधित होने लगते हैं॥३५॥

विपरीत लक्षणं नाड़ी चालनञ्च

सदाशिव उवाच–

यदा प्रत्यूष काले तु विपरीतोदयो भवेत् ।
चन्द्रस्थाने वहत्यर्को रविस्थाने च चन्द्रमाः ।।१।।
प्रथमे मानसोद्वेगं धनहानिं द्वितीयके ।
तृतीये गमनं प्रोक्तमिष्टनाशं चतुर्थके ।।२।।
पञ्चमे राज्यविध्वंसं षष्टे सर्वार्थनाशनम् ।
सप्तमे व्याधिदुःखानि अष्टमे मृत्युमादिशेत् ।।३।।

प्रात:काल में विपरीततः नाड़ी का उदय होने पर अर्थात् वामनासिका में श्वास वहन काल में यदि दक्षिण नासिका से श्वास बहने लगे, और जो समय दक्षिणनासिका से श्वासवहनार्थ निश्चित है, उसमें यदि वामनासिका से प्राणप्रवाह होने लगे तब प्रथमतः चिन्ता और उद्वेग होने लगता है। द्वितीयतः चित्तोद्वेग होता है। तदनन्तर, धनहानि, विदेशयात्रा, मन के सोचे कार्य का नाश, राज्यनाश, सर्वार्थहानि तथा पीड़ा रोग होता है॥१-३॥

कालत्रये दिनान्याष्टौ विपरीतं यदाभवेत् ।
तदा दुष्टफलं प्रोक्तं किञ्चिन्यूने तु शोभनम् ।।४।।

उपरोक्त अष्टकाल में यदि तीन काल में विपरीत उदय होता है, अर्थात् जिस समय जिस स्वर का उदय होना चाहिये, वह न होकर अन्य स्वर का उदय होता है, तब उपरोक्त श्लोक में वर्णित फल में कुछ न्यूनता भी आ जाती है॥४॥

प्रातर्मध्यान्हयोश्चन्द्रः सांयकाले दिवाकरः ।
तदा नित्य जयो लाभो विपरीतन्तु दुःखदम् ।।५।।

प्रातः तथा मध्यान्ह में वामनासिका से तथा सांयकाल में दक्षिणनासिका से श्वास प्रवाहित होने पर विजय तथा लाभ की प्राप्ति होती है। इससे विपरीत होने पर अर्थात् प्रातः तथा मध्यान्ह में दक्षिण नासिका से तथा सांयकाल वामनासिका से श्वास प्रवाह होने पर पराजय तथा हानि का सामना करना पड़ता है।।५।।

यात्राक्रमः

दक्षिणे यदि वा वामे यत्र संक्रमते शिवः ।
तत्पादमग्रतः कृत्वा निःसरेत् निजमन्दिरात् ।।६।।

यात्राकाल में यदि दक्षिण नासिका से श्वासप्रवाह हो रहा हो, तब दाहिना पैर पहले आगे बढ़ाना चाहिये। यदि वाम नासिका से श्वासप्रवाह हो रहा हो, तब बायां पैर पहले आगे बढ़ाना चाहिये।।६।।

चन्द्रः साम्पदकार्याणि रविस्तु विषयः सदा ।
पूर्णपादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ।।७।।

जब वामनासिका से स्वर(श्वास) प्रवाह हो रहा हो, तब सम्पत्ति के लिये यात्रा उस समय करना चाहिये। क्रूरकर्म करने के लिये तब निकलना चाहिये जबकि दाहिनी नासिका से प्राणवायु(श्वास) बह रहा हो। इसप्रकार करने से सफलता मिलती है।।७।।

सप्तपादाः शनिशुक्रे ज्ञातव्याश्च विचक्षणैः ।
चन्द्रे रवौ पदं रुद्रं कुजे बुधे तथैव च ।
सार्द्धं सदा गुरौ पादं ज्ञातव्यञ्च विचक्षणैः ।।८।।

यदि शुक्र अथवा शनिवार को यात्रा करना हो तब धरती पर सात बार पैर से प्रहार करके करना चाहिये। रवि, सोम, मंगल तथा बुध को कहीं जाने के लिये उद्यत होने पर भूमि पर ११ बार पैर से प्रहार करके यात्रा करें। गुरुवार को यात्रा करने के पूर्व १½ बार पैर से धरती पर प्रहार करके यात्रा करे।।८।।

यात्राङ्गे चरते वायुस्तदङ्गस्य करस्थलम् ।
सुप्तेत्स्थितमुखं स्पृष्ट्वा लभते वाञ्छितं फलम् ।।९।।

प्रातः निद्रा से उठने पर जिस नासिका से श्वास बह रही हो, उस ओर की हथेली

से मुख का स्पर्श करके उठने पर मनोभिलाषित फल की प्राप्ति होती है॥९॥

लोकानां शीघ्रगन्तुञ्च कुशलायाङ्गमिष्यते ।
परदले तथा ग्राह्ये हानिश्च कलहागमे ॥१०॥
यदङ्गे वहते नाड़ी ग्राह्यं गतिकरं नृणाम् ।
चन्द्रचारे चतुष्पादं पञ्चपादाश्च भास्करे ।
एवन्तु गमनं श्रेष्ठं साधयेद् भुवनत्रयम् ॥११॥
न हानिः कलहोनैव कण्टकेनापि भिद्यते ।
निवर्त्तते सुखेनैव सर्वापद्‌भिर्विवर्जितः ॥१२॥

जब किसी कार्य हेतु शीघ्रता से अन्य स्थान पर जाना आवश्यक हो, अथवा शत्रु के साथ विवादार्थ जाना आवश्यक होने पर उस समय जिस नाड़ी से श्वास प्रवाहित होरही हो, उसी ओर पैर बढ़ाना चाहिये। यदि उस समय इड़ा नाड़ी से श्वास प्रवाह हो रहा हो (बायीं नासिका से श्वास बह रही हो), तब पृथ्वी पर पांच बार पैर पटक कर यात्रा करें। इसप्रकार से कार्य करने से व्यक्ति त्रिभुवन में विजयी होता है। जो व्यक्ति इस नियम का पालन करके यात्रा करता है, उसे यात्रा काल में तृणमात्र कष्ट नहीं होता। वह अपने घर निरापद रूप से लौट आता है॥१०-१२॥

गुरुबन्धुनृपामात्या अन्येऽपीप्सितदायिनः ।
पूर्णाङ्गो खलु कर्त्तव्या कार्यसिद्धिर्मनीषिभिः ॥१३॥

गुरु, बन्धु, राज्य कर्मचारी अथवा अभीष्ट देने वाले के पास किसी कार्य हेतु जाते समय जिस नासिका से श्वास प्रवाह हो रहा हो, उसी ओर का पैर आगे बढ़ाना चाहिये॥१३॥ (अर्थात् उस ओर के लिये जो नियम है उसका पालन करके आगे बढ़े।)

आसने शमने वापि पूर्णाङ्गे विनिवेशिताः ।
वशीभवन्ति कामिन्यो न कर्मनियमान्तरम् ॥१४॥

बैठे हुये अथवा सोये हुये, अर्थात् सभी अवस्थाओं में ही कामिनी पुरुष के पूर्णाङ्ग पर अवस्थित होने पर ही वशीभूत होती है। इसमें अन्य कोई नियम प्रभावी नहीं होता॥१४॥

अरिचौराधमाद्याश्च अन्ये उत्पातविग्रहाः ।
कर्त्तव्याः खलु रिक्ताङ्गे जयलाभसुखार्थिभिः ॥१५॥

विपक्ष, चोर अथवा अधम पर विजय पाने के लिये, अथवा किसी उपद्रव से छुटकारा पाने के लिये तत्काल तब कार्य करे जब दाहिनी नासिका से प्राण वायु बाहर जा रही हो॥१५॥

दूरदेशे विधातव्यं गमनं तुहिनद्युतौ ।
अभ्यर्णदेशे दीप्ते तु तरणाविति केचन ।।१६।।

किसी का मत है कि बायीं नासिका से जब प्राण वायु चल रही हो, तब दूरस्थ स्थान की यात्रा करे। निकट के स्थान की यात्रा हेतु दाहिनी नासिका से जब प्राण वायु बह रही हो, तब यात्रा करे॥१६॥

यत्किञ्चित् पूर्वमुद्दिष्टं लाभादिसमरागमः ।
तत्सर्वं पूर्णनाड़ीषु जायते निर्विकल्पकम् ।।१७।।

लाभ, युद्ध, आगमन इत्यादि के लिये पूर्णनाड़ी का नियम पालन करना चाहिये। यह निःसंदिग्ध है॥१७॥

शून्यनाड्यां रिपुं जेतुं यत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।
जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् ।।१८।।

पहले शत्रुजयादि जिन कार्यों को करने के लिये शून्यनाड़ीकाल का विधान किया गया है, उन्हे शून्य नाड़ीकाल में ही करे। त्रिकालज्ञ महात्मागण यही कह गये हैं॥१८॥

व्यवहारो खलोच्चाटद्वेषिविद्यादिवञ्चकाः ।
कुपित स्वामिचौराद्याः पूर्णस्थाः स्युर्भयङ्कराः ।।१९।।

विद्वेषयुक्त, उच्चाटनकर्त्ता, विद्यादिवंचक, क्रूर, कुपित स्वामी तथा चोर के साथ किसी प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता होने पर पूर्णनाड़ी में श्वास प्रवाहकाल में कभी भी व्यवहार न करें, अन्यथा अमंगल होता है॥१९॥

दूराध्वनि शुभश्चन्द्रो निर्विघ्न इष्टसिद्धिदः ।
प्रवेशः कार्यहेतुः स्यात् सूर्य शीघ्रः प्रशस्यते ।।२०।।

जब बायीं नासिका में प्राण प्रवाहित हो रहा हो, तब दूरस्थ स्थान की यात्रा करना चाहिये। इससे विघ्न दूर हो जाते हैं और अभीष्ट फल मिलता है। दाहिनी नासिका से जब प्राणवायु भीतर जा रही है तब कार्य में प्रवृत्त होने पर शीघ्र कार्यसिद्धि होती है॥२०॥

अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।
वामे च वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा स्मृता ।।२१।।

जब बायीं नासिका से प्राणवायु चल रही हो तब सामने खड़े हुये प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का फल शुभ होगा। जब बायीं नासिका से प्राण वायु चल रही हो तब फल बतलाने वाले व्यक्ति की बायीं ओर खड़े प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का भी फल शुभ होगा। जब दाहिनी नासिका से प्राणवायु चल रही हो तब यदि प्रश्नकर्त्ता दाहिनी ओर खड़ा हो कर प्रश्न करे, तब भी उसका फल शुभ होगा॥२१॥

चन्द्रचारे विषं हन्ति सूर्ये बालावंश नयेत् ।
सुषुम्नायां भवेन्मोक्ष एको वायुस्त्रिधा स्मृता ।।२२।।

जब बायीं नासिका से वायु चल रही हो तब सांप आदि के काटे के उपचार का कार्य करे। दाहिनी नासिका से प्राण वायु चलते समय बालिका वशीकरण कार्य सफल होता है। सुषुम्ना श्वासप्रवाह के समय योगादि मोक्षकर्म करना चाहिये। एक ही वायु तीन प्रकार से चलकर तीन प्रकार का फल प्रदान करती है॥२२॥

अयोग्ये योग्यता नाड़ी योग्यस्थानेऽप्ययोग्यता ।
कार्यानुबन्धतो जीवः कथमूर्द्ध्वं समाचरेत् ।।२३।।
शुभाशुभानि कार्याणि क्रियतेऽहर्निशं सदा ।
तदा कार्यानुबन्धेन कार्यं नाड़ीप्रचालनम् ।।२४।।

चतुर्थ अध्याय में जिसप्रकार से विभिन्न नाड़ियों में श्वासप्रवाह का वर्णन किया गया है, कभी-कभी कार्य के अनुसार उसमें व्यतिक्रम आवश्यक हो जाता है। तभी कहते हैं कि अयोग्य काल में कार्य के अनुसार किसी एक नाड़ी के श्वासप्रवाह का प्रयोजन होता है और योग्य काल में उसी नाड़ी के श्वास प्रवाह को अप्रयोजनीय माना जाता है अतः कार्य के अनुरूप ही प्राणप्रवाह को प्रयोजनानुरूप परिवर्त्तित कर लेना चाहिये प्रत्येक व्यक्ति को सभी समय शुभ-अशुभ कार्य को सम्पादित करना पड़ता है, अतः कार्य के अनुसार नाड़ी प्रवाह को अभिलषित रूप से इच्छित नासिका में बदल लेने का अभ्यास कर लेना होगा। इसका प्रशिक्षण योग्य गुरु से लेना चाहिये। कभी भी अपने मन से यह कार्य न करे। अर्थात् गुरु से सीखकर तभी यह कार्य करे॥२३-२४॥

अथ इड़ा

सदाशिव उवाच–

स्थिरकर्मण्यलङ्कारे दूराध्वगमने तथा ।
आश्रये हर्म्यप्रासादे वस्तूनां संग्रहेऽपि च ।

वापीकूपतड़ागादि प्रतिष्ठास्तम्भदेवयोः ।
यात्रादाने विवाहे च वस्त्रालङ्कारभूषणे ।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव दिव्यौषधिरसायने ।
स्वामिदर्शनमैत्रे च वाणिज्ये धनसंग्रहे ।
गृहप्रवेशे सेवायं कृष्यां बीजादिवापने ।
शुभकर्माणि सन्धौ च निर्गमे च शुभः शशी ।।२५।।

सदाशिव कहते हैं–

इड़ा वामनासिका से प्राण बहते समय निम्न कार्य करना चाहिये, यथा स्थिर कर्म, अलंकार धारण, दूर देश यात्रा, आश्रम प्रवेश, अट्टालिका निर्माण, रात मंदिर निर्माण, द्रव्य संग्रह, कूपादि तथा बृहद् जलाशय, देव स्तम्भादि प्रतिष्ठा कार्य, यात्रा, दान, विवाह, वस्त्रपरिधान भूषण धारण कार्य, शान्ति पुष्टि कार्य, महौषधि प्रयोग, रसायनिक कार्य, स्वामि दर्शन, बन्धुत्व बढ़ाना, वाणिज्य करना, अर्थ संग्रह, गृहप्रवेश, सेवाकार्य, कृषिकार्य, बीज बोना, सन्धि करना, बाहर जाना।।२५।।

विद्यारम्भादिकार्येषु बान्धवानाञ्च दर्शने ।
जलमोक्षेषु धर्मेषु दीक्षायां मन्त्रसाधने ।
कालविज्ञानसूत्रेण चतुष्पादगृहागमे ।
कालव्याणिविचिकित्सायां स्वामिसम्बोधने तथा ।
गजाश्वारोहणे धन्वी गजाश्वानाञ्च बन्धने ।
परोपकरणे चैव निधीनां स्थापने तथा ।
गीतवाद्योऽपिनृत्ये च गीतशास्त्रविचारणे ।
पुरग्रामप्रवेशे च तिलके सूत्रधारणे ।
पुत्रशोके विषादे च ज्वरिते मूर्च्छितेऽपि वा ।
स्वजनस्वामिसम्बन्धे धान्यादि दारुसंग्रहे ।
स्त्रीणां दन्तादिभूषायां कृषेरागमने तथा ।
गुरुपूजाविषादीनां चालनञ्च वरानने ।
इड़ायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादि कर्म च ।

तत्रापि वर्जयेद्वायुं तेज आकाशमेव च ।
सर्वकार्याणि सिध्यन्ति दिवारात्रिगतान्यपि ।
सर्वेषु शुभकार्येषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ।।२६।।

विद्यारंभकार्य, बन्धुबान्धव दर्शन, जलदानादि शुभकर्म, दीक्षा, मन्त्रसिद्धि, चार पैर के जानवरों को घर लाना, प्रभु सम्बोधन, रोगचिकित्सा, हाथी पर बैठना, धनुष धारण करना, हाथी घोड़ा को बांधना, परोपकार, रत्नादि स्थापन, गीत, वाद्य, नृत्य, गीतशास्त्रविचार, नगर या ग्राम में प्रवेश, तिलक धारण, जनेऊ धारण, पुत्र विच्छेद का शोक प्रकाश, जरावस्था भगाने का उपाय करना, आत्मीय-स्वजन-पति के साथ बातचीत, धान्य-काष्ठ संग्रह, रमणीगण के मुख का अलंकार प्रदान करना, कृषि द्रव्य लाना, गुरु सेवा करना, विषादि को हटाना, योगाभ्यासादि कर्म इड़ा के काल में करना चाहिये। जब इड़ा में (बायीं नासिका में) प्राण प्रवाह चल रहा हो, उस समय वायु-तेज तथा आकाशतत्व वर्जित है। इसप्रकार से रात तथा दिन में समस्त कर्म करना चाहिये। इड़ा में प्राणसंचार के समय समस्त शुभ कार्य करे।।२६।।

पिङ्गलाफलम्

सदाशिव उवाच–

कठिनक्रूरविद्यानां पठने पाठने तथा ।
स्त्रीसङ्गे वेश्यागमने महानौकादिरोहणे ।
नष्टकार्ये सुरापाने वीरमन्त्राद्युपासने ।
बहुलध्वंसदेशादौ विषदानादौ वैरिणि ।
शास्त्राभ्यास्ये च गमने मृगयापशुविक्रये ।
इष्टकाष्टपाषाणरत्नघर्षणदारणे ।
गीताभ्यासे यन्त्रतन्त्रे दुर्गपर्वतरोहणे ।
द्यूते चौर्ये गजाश्वादिरथवाहनसाधने ।
व्यायामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादिसाधने ।
यक्षिणीयक्षवेतालविश्वभूतादिसंग्रहे ।
खरोष्ट्रमहिषादीनां गजाश्वरोहणे तथा ।

नदीजलौघतरणे भेषजे लिपिलेखने ।
मारणे मोहने स्तम्भे विद्वेषोच्चाटने वशे ।
प्रेरणे कर्षणे क्षोभे दाने च क्रयविक्रये ।
खड्गहस्ते वैरीयुद्धे भोगे वा राजदर्शने ।
भोज्ये स्नाने व्यवहारे क्रूरे दीप्ते रविः शुभः ।।२७।।

सदाशिव कहते हैं कि पिंगला(जब श्वास दक्षिण नासिका से प्रवाहित हो) के समय निम्न कार्य करना उचित है, यथा कठिन तथा क्रूर विद्याओं का पठन-पाठन, स्त्री सहवास, वेश्यागमन, बड़ी नौका जहाज पर घूमना, विनाशक कार्य, मद्यपान, वीराचार पद्धति के मन्त्रों की उपासना, देशस्थान अदि का ध्वंस करना, शत्रु को विष देना, शास्त्र का अभ्यास, पशु विक्रय, ईंट काठ-पत्थर प्रभृति तथा रत्न का काटना तोड़ना, गीत का अभ्यास, यन्त्र तन्त्र का कार्य करना, दुर्ग तथा पर्वत पर चढ़ना, जुआ खेलना, चौर कार्य, हाथी-घोड़ा-रथ-यान-वाहन पर आरोहण अभ्यास, व्यायाम, मारण-उच्चाटनादि षट्कर्म प्रयोग, यक्षिणी-बेताल-भूत आदि की सिद्धि, गधा-ऊंट-भैंसा-हाथी की सवारी, नदी पार करना, औषधि सेवन, लिखना, दान करना, क्रय-विक्रय करना, तलवार लेकर युद्ध करना, भोग, राज दर्शन, स्नान, भोजन आदि।।२७।।

भुक्तमात्रेण मन्दाग्नौ स्त्रीणां वश्यादिकर्मणि ।
शयनं सूर्यवाहेन कर्त्तव्यन्तु सदा बुधैः ।
क्रूराणि यानि कर्माणि चारामि विविधानि च ।
तानि सिध्यन्ति सूर्येण नात्र कार्या विचारणा ।।२८।।

भोजन जनित मन्दाग्नि का निवारण, स्त्रीवशीकरण कर्म तथा शयन कार्य पिंगला नाड़ी काल में करें। समस्त क्रूर कर्म पिंगला प्राण प्रवाह काल में साधित हो जाते हैं। यह निःसंदिग्ध है।।२८।।

अथ सुषुम्ना

सदाशिव उवाच–

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः ।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता ।।१।।

सदाशिव कहते हैं कि सुषुम्ना नाड़ी के उदय काल में क्षण में वाम नासिका से क्षण में दाहिनी नासिका से प्राण वायु बहने लगती है। यह समस्त कार्यों को नष्ट करने वाली है।।१।।

तस्यां नाड्यां वन्हिर्ज्वलन्तं कालरूपिणम् ।
विषुवन्तं विजातीयात् सर्वकार्य विनाशनं ।।२।।

कालरूपिणी प्रदीप्त अग्नि सुषुम्ना में विराजमान रहती है। इस समय समस्त कार्य विनष्ट हो जाते हैं।।२।।

यदानुक्रममुल्लङ्घ्य यस्य नाड़ीद्वयं वहेत् ।
तदा तस्य विजानीयादशुभं समुपस्थितम् ।।३।।

जब श्वास प्रश्वास के नियम का इस प्रकार अतिक्रम करके दोनों नासिकाओं से (श्लोक १ के अनुसार) प्राण वायु बहने लगती है, तब अमंगलकारी घटना (कार्य हेतु) होने लगती है।।३।।

क्षणं वामे क्षणं दक्षे विषमं भावमादिशेत् ।
विपरीतफलं ज्ञेयं ज्ञातव्यञ्च वरानने ।।४।।

हे वरानने ! यदि क्षण में वाम नासिका से, क्षण में दाहिनी नासिका से श्वास चले, तब कार्य में विपरीत फल होने लगता है।।४।।

उभयोरेव सञ्चारे विषुवन्तं समादिशेत् ।
न कुर्यात् क्रूर सौम्यानि तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।।५।।

इस प्रकार दोनों नासिकाओं से प्राण संचार होने को विषुवयोग कहते हैं। इस समय क्रूर अथवा सौम्य :.भृति कोई कार्य करना फलदायी नहीं होता।।५।।

जीवि‍ते मरणे प्रश्ने लाभालाभौ जयाजयौ ।
विषुवे वैपरीत्यं स्यात् संस्मरेत् जगदीश्वरं ।।६।।

यदि सुषुम्ना (विषुव योग) प्राणवहन काल में कोई व्यक्ति जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, जय-पराजय का प्रश्न करता है, तब उसका उत्तर यह देना चाहिये कि प्रयत्न निष्फल होगा। इस समय केवल मात्र परमेश्वर का भजन स्मरण करना उचित है।।६।।

ईश्वरस्मरणं कार्यं योगाभ्यासादिकर्मसु ।
अन्यं तत्र न कर्त्तव्यं जयलाभसुखार्थिभिः ।।७।।

इससमय अन्य जय लाभ-सुखादि के लिये कार्य न करके केवल योगाभ्यास, ईश्वर स्मरणादि कार्य को करना चाहिये।।७।।

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः ।
शापं दद्यात् वरं दद्यात् सर्वथा च तदन्यथा ।।८।।

जब सुषुम्ना नाड़ी का प्राणप्रवाह हो रहा हो उससमय जब (क्षणकालार्थ) दक्षिण नाड़ी में प्राण होने लगे तभी अभिषाप अथवा वरदान देने से उसका फल विपरीत उलटा होता है॥८॥

नाड़ीसंक्रमेण काले तत्संक्रमणे तथा ।
शुभं किञ्चित् न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि कोटिधा ।।९।।

एक नासिका के स्थान पर दूसरी नासिका से प्राण प्रवाह प्रारंभ होते समय तथा भिन्न तत्वों के उदयके समय पुण्य दान आदि कार्य न करे॥९॥

विषमस्योदये यात्रा मनसापि न चिन्तयेत् ।
यात्राहानिकरी तस्य मृत्युक्लेशे न संशयः ।।१०।।

पिंगला नाड़ी में प्राण प्रवाह होते समय यात्रा करने की बात सोचना भी उचित नहीं है। उस समय यात्रा करने से हानि एवं मृत्यु के समान कष्ट होता है॥१०॥

पुरो वामोर्द्धतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्ठतोरविः ।
पूर्णरिक्तविवेकोऽयं ज्ञातव्यो देशिकैः सदा ।।११।।

सम्मुख वाम तथा उर्ध्व दिशा की अधिपति है इड़ा नाड़ी। दक्षिण, अधः तथा पीछे की दिशा की अधिपति है पिंगला नाड़ी। पूर्व एवं शून्य नाड़ी के विषय में साधक को आगे बतलाया जायेगा। इस विषय में विज्ञ साधक को पूरक एवं रेचक का विचार करना आवश्यक है॥११॥

उर्ध्ववामाग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथिस्थितः ।
पृष्ठे दक्षे तथाधस्तात् सूर्यवाहगतः शुभः ।।१२।।

ईड़ा नाड़ी प्राणप्रवाह काल में उर्ध्व, वाम तथा आगे से और पिंगला नाड़ी प्राण-प्रवाहकाल में अधः, दाहिने तथा पीछे से संवाद प्राप्त हो तब वह शुभ फलप्रद होता है। अर्थात् उस समय उस दिशा में खड़ा होकर प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे, तब फल शुभ होता है॥१२॥

इड़ा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वती विन्द्यात् प्रयागादिसमन्ततः ।।१३।।

इड़ानाड़ी=गङ्गा। पिंगला=यमुना। सुषुम्ना=सरस्वती। जहां (शरीर में) ये तीन एकत्र हैं, वही स्थान प्रयाग है॥१३॥ (मूलाधार में कन्दमूल नामक स्थान में अन्यान्य नाड़ियों के साथ सुषुम्ना का संगम होता है। यही संगम स्थल प्रयाग है।)

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
वद्धपद्मासनोयोगी वन्धयेउड्डीयानकम् ।।१४।।

प्रथमतः सद्यः विश्वासप्रद साधनप्रणाली को कहते हैं– पहले पद्मासन लगाकर उड्डीयान बन्ध करे।।१४।।

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः ।
ज्ञातव्यो योगिभिनित्यं देहसंसिद्धिहेतवे ।।१५।।

शरीर शुद्धि हेतु पूरक-कुंभक तथा रेचक करे। इससे देह शुद्ध होती है। योगीगण देहशुद्धि हेतु इसे नित्य करते हैं। (इड़ा में पूरक-सुषुम्ना में कुंभक तथा पिंगला में रेचक होता है। तदनन्तर पिंगला में पूरक, सुषुम्ना में कुंभक तथा इड़ा में रेचक करना ही प्राणायाम है।)।।१५।।

पूरकः कुरुते पुष्टिं धातुसाम्यं तथैव च ।
कुम्भकः स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्द्धनम् ।
रेचको हरते पापं कुर्याद्योगपदं ब्रजेत् ।
पश्चात् संग्रामवत्तिष्ठेत् पद्मे बन्धे च कारयेत् ।।१६।।

पूरक द्वारा पुष्टि साधन होता है और पित्त, कफ तथा श्लेष्मा की साम्यावस्था आती है। कुंभक द्वारा जीवनरक्षा एवं वृद्धि होती है। रेचक से शरीरगत पाप नष्ट होता है अर्थात् विशुद्ध वायु शरीर में प्रवेश करती है। दूषित वायु बाहर जाती है। इससे शरीर का कल्मष दूर होता है। अन्त में प्राणायाम पूर्ण करके पद्मासन त्यागकर वीरासन पर क्षणकाल के लिये बैठे।।१६।।

कुम्भयेत् सहजं वायुं यथाशक्त्या प्रयत्नतः ।
रेचयेच्चन्द्रमार्गेण सूर्येण पूरयेत् सुधीः ।
चन्द्रं पिवति सूर्यश्च सूर्यं पिवति चन्द्रमाः ।
अन्योन्यकालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकम् ।।१७।।

योगारंभ के समय एक बार से अधिक प्राणायाम न करें। यथासाध्य यत्न के साथ क्रमशः इसकी संख्या बढ़ायें। पहले दाहिनी नासिका से पूरक करके कुंभक करे और वामनासिका से वायु बाहर छोड़कर रेचक करे। तत्पश्चात् बायीं नासिका से पूरक करके कुंभक करे, तब दाहिनी नासिका से वायु बाहर छोड़कर रेचक करे। ऐसा करके साधनबल से योगी तबतक जीवित रहता है जब तक चन्द्रमा तथा तारागण विद्यमान हैं।।१७।।

स्वीयाङ्गे वहते नाड़ी तन्नाड़ीरोधनं कुरु ।
मुखबन्धममूचानः पवनं जयते युवा ।।१८।।

नाड़ी अपने योग्य अंग में बहती है। इस स्थिति में प्रयोजनानुसार उस नाड़ी का रोध करे तथा दूसरी नाड़ी के मुख को खोले। ऐसा व्यक्ति वायुजयी होकर चिरजीवी तथा चिरयुवा हो जाता है। (अर्थात् नासिका रंन्ध्र में से जिस रन्ध्र को चाहे उसी से प्राणप्रवाह प्रयोजन के अनुसार चलाये दूसरे नासारंन्ध्र का प्राणप्रवाह रोक दे)।।१८।।

मुखनासाक्षिकर्णानामङ्गुलीभिर्निरोधयेत् ।
तत्वोदयामितिज्ञेयं सम्मुखीकरणं प्रिये ।।१९।।

मुखछिद्र, दोनो नासाछिद्र, दोनो नेत्र तथा दोनो कानो का उंगलियो से बन्द करे। इससे यह ज्ञात होता है कौन तत्व उदित हो रहा है। साथ ही सामने तत्वों का आकारादि प्रतीत होने लगता है।।१९।।

तस्या रूपं गतिः स्वादोमण्डलं लक्षणस्त्विदम् ।
यो वेत्ति वै नरोलोके स तु शूद्रोऽपि योगवित् ।।२०।।

जो व्यक्ति तत्वों का रूप, गति, स्वाद, मण्डल तथा लक्षण जान लेता है, वह शूद्र होने पर भी योगी कहलाने योग्य है।।२०।।

निराशी निर्मलो योगी न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
वासना उन्मुलीकृत्वा कालं जयति लीलया ।।२१।।

योगी आशारहित, निर्मल तथा निर्विचार होता है। वह वासनाओं का समूल नाश करके खेल-खेल में काल को जीत लेता है।।२१।।

विश्वस्य वेशिका शक्तिर्नेत्राभ्यां परिदृश्यते ।
तत्रस्थं तु मनो यस्य याममात्रं भवेदिह ।
तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटिकात्रिप्रमाणतः ।
शिवेनोक्तं पुरा तन्त्रं सिद्धस्य गुणगह्वरम् ।।२२।।

योगी व्यक्ति ब्रह्माण्ड का समस्त विषय योगबल से प्रत्यक्ष करता है। उसका मन प्रहर मात्र मे समस्त ब्रह्माण्ड का दर्शन करने में समर्थ हो जाता है। प्रतिमुहुर्त्त उसकी आयु तीन घड़ी के हिसाब से बढ़ती जाती है। शिव स्वयं कहते हैं स्वरोदय नामक यह शास्त्र सिद्धिप्रद तथा नानागुण की खान है।।२२।।

बद्धपद्मासनस्थोगुदपवनचयं सन्निरुध्योर्द्धमुच्चैः ,
प्राणं वक्त्रेण कुम्भत्रयाजितमनिलं प्राणशक्त्या निरुध्य ।
एकीभूतं सुषुम्नाविवरमुखगतं ब्रह्मवक्त्रे च नीत्वा ,
निःक्षिप्याकाशमार्गे शिवचरणता यान्ति ते केऽपि धान्याः ।।२३।।

पद्मासनासीन होकर गुह्यदेशस्थ अपान को रुद्ध करके क्रमशः उर्ध्व में उसे उठाये वक्रपथ से प्राणवायु को कुंभकत्रय द्वारा स्तम्भित करके प्राणशक्ति द्वारा रुद्ध करे। इस प्रकार दोनो वायु को एकत्र करके सुषुम्ना नाड़ी के छिद्र में प्रवेश कराये तथा उसे ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाये। तदनन्तर सुषुम्नान्तर्गत अति सूक्ष्म वज्रा नाड़ी में उसे लाकर शिव के चरणों में गिराये अर्थात् सहस्त्र दल की कर्णिका में लीन करे।

जो योगी इस क्रिया को सम्पन्न करते हैं, वे संसार में धन्य हैं।।२३।।

●

तत्व निर्णयः

अध्याय ४

तत्वनिर्णयः

देव्युवाच

देवदेव महादेव संसारार्णवतारक ।
त्वदीयहृदयस्थं हि रहस्यं वद मे प्रभो ।।१।।

देवी कहती हैं– हे महादेव! हे देवदेव! संसार सागर से पार उतारने वाले! हे प्रभो! आपके हृदय में जो स्वरतत्व सम्बन्धित रहस्य निहित है, उसे मुझे बताने की कृपा करें।।१।।

ईश्वर उवाच–

स्वरज्ञानं रहस्यं तु न किञ्चिदिष्टदेवता ।
स्वरज्ञानरतोयोगी स योगी परमो मतः ।।२।।

ईश्वर कहते हैं–यह अत्यंत गोपनीय तत्व है। यह इष्ट देवता की तुलना में तनिक भी कम नही है। जो इसे जानकर योगसाधना करते हैं, वे ही यथार्थ योगी हैं।।२।।

पञ्चतत्वाद् भवेत् सृष्टिस्तत्त्वे तत्वं विलीयते ।
पञ्चतत्वं परं तत्वं तत्वातीतं निरञ्जनं ।।३।।

समस्त सृष्टि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश से समुत्पन्न होती है। प्रलयकाल में यह सृष्टि पंचतत्व में ही विलीन हो जाती है। इन पंचतत्वों से परे वाले तत्व को निरंजन, तत्वातीत कहते हैं।।३।।

तत्वानां नाम विज्ञेयं सिद्धियोगेन योगिनाम् ।
भूतानां दुष्टचिन्हानि जानन्ति हि स्वरोत्तमात् ।।४.।।

तत्वों के सम्बंध में ज्ञान होना आवश्यक है। जो योगी गण में भी श्रेष्ठ योगी हैं वे प्रत्यक्ष अनुभूति करके पृथ्वी आदि तत्वों के दुष्ट चिन्हादि जान लेते हैं।।४।।

पृथिव्यापस्तथातेजोवायुराकाशमेव च ।
पञ्चभूतात्मकं सर्वं योजनाति स पूजितः ।।५।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा व्योम से समस्त सृष्टि उद्‌भूत होती है। जिन्हे यह पंचतत्व ज्ञात हैं, वे ही सर्वपूज्य हैं।।५।।

सर्वलोकेषु जीवानां न देहे भिन्नतत्त्वकम् ।
भूलोकात् सत्यपर्यन्तं नाड़ीभेदः पृथक् पृथक् ।
वामे वा दक्षिणे वापि उदयः पञ्च कीर्त्तिताः ।।६।।

पृथ्वीलोक से आरंभ करके सत्यलोक पर्यन्त सर्वत्र ही तत्व समूह द्वारा ही शरीर रचना होती है। सभी देहों में पृथक् पृथक् नाड़ियां विद्यमान रहती हैं। इनमें से इड़ा एवं पिंगला में ही पंचतत्व का उदय होता है।(सुषुम्ना पंचतत्वों से परे है) समस्त जीव पंचतत्वों के अधीन हैं। पिंगला तथा इड़ा से ये पांचतत्व उदित होते रहते हैं॥६॥

अष्टधा तत्वविज्ञानं श्रृणु वक्ष्यामि सुन्दरि ।
प्रथमे तत्वसंख्यायां द्वितीये श्वाससन्धिषु ॥७॥
तृतीये स्वरचिन्हानि चतुर्थे स्थानमेव च ।
पञ्चमे तस्य वर्णश्च षष्टे तु प्राणमेव च ॥८॥
सप्तमे श्वाससंयुक्तमष्टमे गतिलक्षणम् ।
एवमष्टविधं प्राणं विषुवन्तं चराचरम् ।
स्वरात् परतरं देवि नान्यथा त्वम्बुजानने ॥९॥

हे कमललोचनों वाली! अष्टविध तत्वविन्यास का वर्णन सुनो। पहले तत्वों की संख्या है। तदनन्तर श्वाससन्धि का अर्थात् श्वास के आने जाने के विन्दु को जब श्वास बाहर आकर तत्काल अन्दर जाने लगती है उस द्वादशान्त विन्दु का ज्ञान होना चाहिये। तृतीयतः स्वरचिन्ह समूह को जाने। चतुर्थतः वाम तथा दक्षिण नासिका के उर्ध्व, अधः, पार्श्वगत स्वरप्रवाह के स्थान का अनुधावन करना चाहिये। पंचमतः में स्वर का वर्ण जाने। षष्टतः उसका परिमाण (प्राण अथवा शक्तिस्वरूप) जाने। सप्तमतः उसका स्वाद और अष्टमतः उसका गतिलक्षणादि अनुभव करे। इससे इन सब ज्ञान द्वारा तत्वों का निरुपण हो जाता है। हे देवी! स्वरज्ञान से श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं है॥७-९॥

निरीक्षितव्यं यत्नेन यदा प्रत्यूषकालतः ।
कालस्य वञ्चनार्थाय कर्म कुर्वन्ति योगिनः ॥१०॥

योगीगण काल को हटाने के लिये प्रातःकाल उठकर यत्नपूर्वक इन समस्त तत्वों का लक्षण जानकर कार्य करते हैं॥१०॥

श्रुत्येरङ्गुष्ठकौ मध्याङ्गुलौ नासापुटद्वये ।
यदनप्रान्तयोरन्ते तर्जन्यौ तु दृगन्तयोः ॥११॥
पार्थिवादितत्वज्ञानं भवेद् क्रमात् ।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्विन्दुभिर्निरुपाधिकं ॥१२॥

दोनों हाथों के अंगूठे द्वारा दोनो कान बंद करे दोनो मध्यमा अंगुलियों द्वारा दोनो नाक बन्द करे। दोनो अनामिका तथा कनिष्ठिका द्वारा मुख बन्द करे। एवं दोनो तर्जनी से आंखे बन्द करे। अब इस स्थिति में यदि पीला रंग दीखता है तब पृथ्वी तत्व, श्वेतवर्ण दीखने पर जलतत्व, रक्तवर्ण दीखने पर वायुतत्व तथा विन्दु-विन्दु करके अनेक वर्ण दीखने पर आकाशतत्व का उदय जानना चाहिये॥११-१२॥

दर्पणेन समालोक्य श्वासं तत्र विनिक्षिपेत् ।
आकारैस्तु विजानीयात् तत्वभेदं विचक्षणः ।।१३।।

दर्पण पर श्वास छोड़ने से उसपर भाप छा जाती है। उस भाप से दर्पण पर जो आकृति बने उससे विद्वान व्यक्ति तत्व का निर्णय कर लेते हैं॥१३॥

चतुरस्त्रं चार्द्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्त्तुलं स्मृतम् ।
विन्दुभिस्तु नभोज्ञेयमाकारैस्तत्वलक्षणम् ।।१४।।

यदि भाप दर्पण पर चौकोर आकृति धारण करे, उससमय पृथ्वी तत्व का उदय होता है। अर्द्धचन्द्र आकृति=जलतत्व, त्रिकोण= अग्नितत्व, वृत्ताकृति= वायुतत्व, विन्दुवत् = आकाशतत्व जाने॥१४॥

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्द्ध वहति चानलः ।
तिर्यग् वायुप्रचारश्च नभोवहति संक्रमे ।।१५।।

नासाछिद्रों के मध्य में पृथ्वी तत्व है। अधोभाग में जलतत्व, उर्ध्वभाग में अग्नितत्व, पार्श्व में वायु तथा सर्वव्यापी संक्रमण में आकाशतत्व रहता है। अर्थात् नासापुटों के मध्यभाग का स्पर्श करके श्वास बहने पर पृथ्वी तत्व, अधोभाग से बहने पर जलतत्व, उर्ध्वभाग से प्रवाह होने पर वायुतत्व तथा आभ्यन्तर में घूमकर प्रवाहित होने पर आकाशतत्व का उदय जानें॥१५॥

माहेयं मधुरं स्वादु कषायं जलमेव च ।
तिक्तं तेजश्च व्याव्यम्लं आकाशं कटुकं तथा ।।१६।।

पृथ्वीतत्व के उदय में मीठा, जलतत्वोदय में मीठा तथा कषाय(कसैला), अग्नितत्व में तीता, वायुतत्व में अम्लस्वादमय तथा आकाशतत्वोदय में कड़वा स्वाद अनुभूत होता है॥१६॥

अष्टाङ्गुल वहेद्वायुरनलश्चतुरङ्गुलं ।
द्वाद्वशाङ्गुलं माहेयं षोडशाङ्गुलं वारुणं ।।१७।।

श्वास बाहर जाते समय यह देखें कि वह कितनी दूर जा रही है। इसका अनुभव उंगलियों पर वायुस्पर्श से जाना जा सकता है। अर्थात् नासापुटों के आगे अंगुलियों से यह अनुभव करे कि कितनी दूरीतक बाहर वायु जा रही है, तदनुसार

८ अंगुल = वायुतत्व, ४ अंगुल = अग्नितत्व, १२ अंगुल = पृथ्वीतत्व, १६ अंगुल = जलतत्व (आकाश तत्व में वायु प्रवाह आभ्यन्तरीण है अत: उसका परिमाण नहीं जाना जा सकता)।।१७।।

आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णा हुताशनः ।
मारुतो नीलजीमूत आकाशं भूरिवर्णकं ।।१८।।

जलतत्व = शुभ्रवर्ण, पृथ्वीतत्व = पीलावर्ण, अग्नितत्व = रक्तवर्ण, वायुतत्व= नीला मेघ के समान, आकाशतत्व = नानावर्ण संयुक्त।।१८।।

(अन्य ग्रंथों के अनुसार पृथ्वी = कठोर, जल = शीतल, अग्नि = उष्ण, वायु = चर तथा आकाश स्थिर होता है।

पृथ्वी का द्वार = मुख। जलतत्व द्वार = लिंग। अग्निद्वार = नेत्रद्वय। वायुद्वार = दोनों नासिका। आकाशतत्वद्वार = कान।

तत्वों के द्वार की क्रिया

पृथ्वी द्वार = भोजन। जलद्वार = रमण। अग्निद्वार = दृष्टि। वायुद्वार = सूंघना। आकाशद्वार = शब्द।

स्कन्धदेशे स्थितोवन्हिर्नाभिमूले प्रभञ्जनः ।
जानु देशे मही तोयं पादान्ते मस्तकेनमः ।।१९।।

मस्तक में = अग्नितत्व। नाभिमूल में=वायुतत्व। जानुओं में=पृथ्वी। चरणों में= जल तथा मस्तक में = आकाशतत्व का स्थान है।।१९।।

उर्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तिर्यगुच्चाटनं तथा ।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्नभः सर्वत्र मध्यमं ।।२०।।

अग्नितत्वोदय के समय मारण क्रिया करे। जल तत्वोदय के समय शान्तिकर्म करे। वायुतत्व के उदयकाल में उच्चाटन तथा पृथ्वीतत्वोदय के समय स्तम्भन क्रिया प्रभावी होती है। आकाशतत्व के उदय पर मध्यविध कर्मों का प्रयोग करे।।२०।।

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।
तेजसा समकार्याणि मारणोच्चाटनेनिले ।।२१।।

पृथ्वीतत्व में = स्थिरकर्म। जलतत्व में = चरकर्म। अग्नितत्व में = समकर्म। वायुतत्व में = मारण उच्चाटनादि करे॥२१॥

व्योम्नि किञ्चिन्न कर्त्तव्यमभ्यासेद् योगसेवया ।
शून्यता सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ।।२१।।

आकाशतत्वोदय के समय कोई कार्य न करे। केवल योगाभ्यासादि ईश्वरार्चन करे। अन्य कार्य करने से वे सफल नहीं होते॥२१॥

पृथ्वीजलाभ्यां सिद्धिःस्यात् मृत्युर्वन्हौ क्षयोऽनिले ।
नभसि निष्फलं सर्वं ज्ञातव्यं तत्ववेदिभिः ।।२२।।

पृथ्वी तथा जल तत्वोदय के समय कार्यसिद्धि होती है। अग्नितत्वोदय में मृत्यु, वायु तत्वोदय में क्षय तथा आकाशतत्वोदय में कार्य हानि होती है। इसे जानना जरुरी है॥२२॥

चिरलाभः क्षितौ ज्ञेयस्तत् क्षणात्तोयतत्वतः ।
हानिः स्याद्वन्हिवाताभ्यां नभसा निष्फलं भवेत् ।।२३।।

पृथ्वीतत्वोदय से विलम्ब में लाभ होता है। जलतत्वोदय में = तत्क्षण लाभ, अग्नि तथा वायु तत्व में हानि, आकाशतत्वोदय में = सर्वार्थ हानि॥२३॥

पीतः शनैर्मध्यवाही शृणुयाच्च गुरुध्वनिम् ।
करोष्णः पार्थिवोवायुः स्थिरकार्यप्रसाधकः ।।२४।।

पृथ्वीतत्व पीतवर्ण है, क्रमशः नासिका के मध्यप्रदेश से बाहर वायुरूपेण प्रवाहित होता है। इसका शब्द गंभीर है। यह कुछ उष्ण है और इसके उदयकाल में स्थिर कार्य सम्पन्न होता है॥२५॥

अधोवाही गुरोध्वानं शीघ्रगः शीतलः सितः ।
यः षोडशाङ्गुलो वायुः स प्रायः शुभकर्मकृत् ।।२६।।

जलतत्व नासिका के अधः भाग से प्रवाहित होता है। यह गंभीर ध्वनियुत्त शीघ्रगामी, शुक्लवर्ण, शीतल है। यह नासिका से ६ अंगुल पर्यन्त बाहर जाता है। इस तत्व के उदयकाल में समस्त शुभकार्य सिद्ध होते हैं॥२६॥

आवर्त्तगश्चात्युष्णश्च शोणाभःश्चतुरङ्गुलः ।
उर्ध्ववाही तु यः क्रूरकर्मकारी स तेजसः ।।२७।।

अग्नितत्व के उदय काल में नासिकागत वायु गोल घूम-घूम कर नासिका के उर्ध्व कोने से बाहर निकलती है। यह लालवर्ण, अति उष्ण तथा बाहर ४ अंगुल जाती है,

इस तत्व के काल में क्रूरकर्म सिद्ध होते हैं।।२७।।

उष्णः शीतः कृष्णवर्णस्तिर्यग्गामी षड़ङ्गुलः ।
वायुः पवनसंज्ञोयः चरकर्मसु सिद्धिदः ।।२८।।

वायु तत्व के उदयकाल में श्वास वामनासिका के पार्श्वभाग का स्पर्श करती ६ अंगुल पर्यन्त बाहर आती है। यह कृष्णवर्ण, शीतल, उष्ण तथा कुटिलगामी है वक्रगामी है। इस तत्व के काल में समस्त चरकार्य सिद्ध करे।।२८।।

यः समीरः समरसः सर्वसत्वगुणावहः ।
अम्बरं तं विजानीयाद् योगिनां योगदायकः ।।२९।।

व्योमतत्व के उदय काल में पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु, इन सबका गुण दृः होता है। इस तत्वोदय काल में योगीगण योगसिद्धि करते हैं।।२९।।

पीतञ्चैव चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रयं ।
भोगदं पार्थिवं तत्वं प्रवहेद्द्वादशाङ्गुलं ।।३०।।

पृथ्वीतत्व पीला, चौकोर तथा मधुर स्वादमय है। इस तत्व की श्वास नासिका छिद्रों के मध्य से प्रकट होती है। यह भोगजनक है। इसकी वायु १२ अंगुलपर्यन्त बाहर जाती है।।३०

श्वेतमर्द्धेन्दुसङ्काशं स्वादु कषायमादकम् ।
लाभकृद्वारुणं तत्वं प्रवहेत् षोडशाङ्गुलं ।।३१।।

जलतत्व के उदय काल में श्वास वायु नासिका से १६ अंगुल पर्यन्त बाहर जा है। यह श्वेतवर्ण, अर्द्धचन्द्राकृति, मीठाकसैला युक्त स्वाद, अर्थात् सुरा के समान स्व वाला लगता है। इससे समस्त प्रकार के फल प्राप्त होते हैं।।३१।।

रक्तं त्रिकोणं तिक्तं स्यादूर्द्धमार्गप्रवाहकम् ।
दीप्तञ्च तैजस तत्वं प्रवाहे चतुरङ्गुलम् ।।३२।।

अग्नितत्व = रक्तवर्ण, त्रिकोणाकृति, तीता, नासिका छिद्र में उर्ध्व से प्रवाहि होकर बाहर चार अंगुलपर्यन्त जानेवाला, दीप्त तत्व है।।३२।।

नीलवर्त्तुलसङ्काशं स्वाद्वम्लं तिर्यगाश्रितम् ।
चपलं मारुतं तत्वं प्रवाहेऽष्टाङ्गुलं स्मृतम् ।।३३।।

वायुतत्व=नासारंन्ध्रों के पार्श्व का स्पर्श करता प्रवाहित होता है, नीलवर्ण तथा वृत्ताक अम्ल के जैसे स्वाद वाला। बाहर आठ अंगुल पर्यन्त श्वास इसके उदयकाल में जाती है।।३

वर्णाकारं स्वादुवहं अव्यक्तं सर्वगामि च ।
मोक्षदं व्योमतत्वं हि सर्वकार्येषु निष्फलम् ।।३४।।

आकाशतत्व=नासिका छिद्र के अंदर सर्वत्र स्पर्श करता प्रवाहित होता है। अव्यक्त है। इसके उदयकाल में लौकिक कर्म न करे। केवल मोक्षप्रद कार्य करे।।३४।।

पृथ्वीजले शुभे तत्वे तेजोमिश्रफलोदये ।
हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभौ व्योममारुतौ ।।३५।।

पृथ्वी, जल=शुभ तत्व। अग्नितत्व=मिश्रित फलप्रद। आकाश एवं वायुतत्व= हानिकर-मृत्युकर।।३५।।

अपूर्वा पश्चिमे पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे तथा ।
वायुरुत्तरदिग्भागे मध्यकोणे गतं नभः ।।३६।।

पृथ्वी=पश्चिम। जल=पूर्व। अग्नि दक्षिण। वायु=उत्तर तथा आकाश मध्यकोण में स्थित है।।३६।।

चिरलाभं क्षितौ ज्ञेयस्तत्क्षणात्तोयतत्वतः ।
हानिः स्याद्वन्हिवाताभ्यां नभसि निष्फलं भवेत् ।।३७।।

क्षितितत्व=विलम्बित फल। जलतत्व = तत्काल फल। वन्हि (अग्नि) तथा वायु तत्व=नष्ट फल। आकाशतत्व में समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं।।३७।।

चन्द्रे पृथ्वीजले स्यातां सूर्ये चाग्निर्यदा भवेत् ।
तदा सिद्धिर्न सन्देहः सौम्यासौम्येषु कर्मसु ।।३८।।

जब बायीं नासिका (चन्द्रनाड़ी, इड़ा) से प्राण बहता हो तब यदि जल अथवा पृथ्वीतत्व का उदय हुआ हो तब शुभकर्म फलप्रद होगा। और जब दाहिनी नासिका (सूर्य नाड़ी, पिंगला) से प्राण बहे और उस समय अग्नितत्व का उदय हो, तब क्रूरकर्म सफल होगा।।३८।।

लाभः पृथ्वीकृतोवन्हिनिशायां लाभकृज्जलं ।
वन्हौ मृत्युः क्षतिर्वायौः नभः स्थानं दहेत् क्वचित् ।।३९।।

पृथ्वीतत्व के उदय में लाभ, अग्नि तथा जलतत्व के उदय में भी रात्रिकाल में लाभ। अग्नि तत्व के उदय से मृत्यु। वायुतत्व=हानि। आकाशतत्व में स्थान दग्ध होना।।३९।।

जीवितव्ये जये लाभे कृष्याञ्च धनकर्षणे ।
मन्त्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ।।४०।।

जीवित है कि नहीं, जय, लाभ, कृषि कार्य, धनोपार्जन, मन्त्र, अर्थ युद्ध का

प्रश्न, गमन आगमन इत्यादि का प्रश्न पूछे जाने पर पंचतत्व का निर्णय करके फल बताना चाहिये।।४०।।

आयाति वारुणे तत्वे तत्रस्थोऽपि शुभः क्षितौ ।
प्रयाति वायुतोऽनात्र हानिर्मत्युर्नभेनले ।।४१।।

जलतत्वोदयकाल में किसी आत्मीय के विदेश से वापस आने का प्रश्न करने पर उत्तर होगा कि वह लौट रहा है। पृथ्वीतत्व के उदयकाल पर उत्तर होगा कि वह आ चुका है। अन्य प्रश्नों का भी उत्तर शुभ होगा। वायु तत्व के उदयकाल में गमनागमन सम्बन्धित प्रश्न का उत्तर होगा कि वह अन्य स्थान को जा रहा है। अग्नि तथा व्योमतत्व (आकाश) के उदयकाल में प्रश्न का उत्तर होगा कि मरण एवं हानि।।४१।।

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्यात् जीवस्य जलवातयोः ।
तेजसा धातुचिन्ता स्यात् शून्यमाकाशतो वदेत् ।।४२।।

पृथ्वीतत्व के उदयकाल में प्रश्न होगा मूल चिन्ता संबन्धित। जल तत्व तथा वायु तत्व के उदयकाल में प्रश्न होगा जीवचिंता संबन्धित। अग्नितत्व = धातुचिन्ता संबन्धित प्रश्न। आकाशतत्व = किसी विषय की चिन्ता नही है।।४२।।

पृथिव्यां बहुपादाः स्युर्द्विपदास्तोयदायुतः ।
तेजसा च चतुष्पादा नमसा पादवर्जिताः ।।४३।।

प्रश्नकाल में जो तत्व हो उसप्रकार का पादनिर्णय होगा।

पृथ्वीतत्व = बहुपाद चिन्ता। जलतत्व तथा वायुतत्व = द्विपादचिन्ता। अग्नितत्व= चतुष्पाद चिन्ता। आकाशतत्व = पादवर्जित।।४३।।

कुजोवन्हिरविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तिताः ।
वायुस्थानस्थितो राहुर्दक्षवक्त्रप्रवाहकः ।।४४।।
जलं चन्द्रो बुधः पृथ्वी गुरुर्वातः सितोऽनलः ।
वामनाड्यां स्थिताः सर्वे सर्वकायेषु निश्चिताः ।।४५।।

दाहिनी नासिका से प्राणप्रवाह काल में अग्नितत्व का अधिपति=मंगल। पृथ्वीतत्व= सूर्य। जलतत्व=शनि। वायुतत्व=राहु अधिपति होता है।

इसीप्रकार वाम नासिका से प्राणप्रवाह काल में जलतत्व=चन्द्र। पृथ्वीतत्व=बुध। वायुतत्व=बृहस्पति। अग्नितत्व = शुक्रग्रह अधिपति होता है।।४४-४५।।

●

तत्व गुणाः

अध्याय ५

तत्वगुणाः

तुष्टिःपुष्टिरतिः क्रीड़ा जयो हास्यं धरातले ।
ते जो वायुश्च सुप्ताक्षो ज्वरकल्पं प्रवासिनः ।।१।।
गतायुर्मृत्युराकाशे चन्द्रावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ।
द्वादशैताः प्रयत्नेन ज्ञातव्या देशिकोत्तमैः ।।२।।

जब इड़ा नाड़ी में प्राण प्रवाह होरहा हो, उस समय यदि पृथ्वी अथवा जलतत्व का उदय हुआ है, उस स्थिति में परदेश गये व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछा जाने पर उत्तर शुभ होगा। अर्थात् तुष्टि, पुष्टि, रीति, केलि क्रीड़ा, जय तथा आनन्दित स्थिति में प्रवासी व्यक्ति होगा। इस स्थिति में ही यदि (पृथ्वी तथा जलतत्व के स्थान पर) अग्नि किम्वा वायु तत्व का उदय हुआ हो, तब प्रवासी व्यक्ति निद्रा, ज्वर तथा कम्प से ग्रसित होगा। उस समय यदि आकाश तत्व का उदय हुआ हो, तब प्रवासी व्यक्ति मरण अथवा परमायु क्षय की स्थिति में होगा। विद्वान स्वरविज्ञानी को प्रश्न के उत्तर में उपरोक्त तुष्टि-पुष्टि प्रभृति १२ स्थिति के विषय में ज्ञाता होना चाहिये (ताकि उचित प्रश्नोत्तर दे सके)।।१-२।।

पूर्वायां पश्चिमे याम्ये उत्तरायां यथाक्रमं ।
पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्ठानि विनिर्दिशेत् ।।३।।

पृथ्वीतत्व पूर्व में, जलतत्व पश्चिम में, अग्नि तत्व दक्षिण में तथा वायु तत्व उत्तर दिशा में स्थित रहता है।।३।।

पृथिव्यापस्तथा ते जो वायुराकाशमेव च ।
पञ्चभूतात्मकं देहं ज्ञातव्यञ्च वरानने ।।४।।

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश ही पंचतत्व हैं। हे वरानने! इन पांचो के द्वारा ही देह का निर्माण होता है।।४।।

अस्थि मांसं त्वचा नाड़ी रोमञ्चैव तु पञ्चमम् ।
पृथ्वी पंचगुणोपेतो ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।५।।
शुक्रशोणितमज्जा च लाला मूत्रञ्चपञ्चमम् ।
आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।६।।
क्षुधाः तृष्णा तथा निद्रा श्रान्तिरालस्यमेव च ।
तेजः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।७।।
धारणं चालनं क्षेप्य सङ्कोचनप्रसारणे ।
वायोः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।८।।

रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पञ्चमः ।
नभःपञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।९।।

अस्थि, मांस, त्वचा, नाड़ी तथा रोम=पृथ्वीतत्व के गुण। शुक्र, शोणित, मज्जा, लार तथा मूत्र=जलतत्व के गुण। क्षुधा, तृष्णा, निद्रा, भ्रान्ति तथा आलस्य=तेज तत्व के गुण। धारण, चालन, फेकना, संकोचन, प्रसारण=वायुतत्व के गुण। राग, द्वेष, भय, लज्जा, मोह=आकाशतत्व के गुण यह सब ब्रह्मज्ञान में बतलाया गया है।।५-९।।

पृथिवीपलयञ्चाशत् चत्वारिंशदपस्तथा ।
तेजास्त्रिंशद्विजानीयाद्वायोर्विंशतिदिङ्नभः ।।१०।।

नासापुटों से श्वास उदित होने पर प्रत्येक नासिका में २ १/२ दण्ड पर्यन्त श्वास चलती है। तदनन्तर दूसरे नासाछिद्र से २ १/२ दण्ड श्वास चलने लगती है। ऐसा बारम्बार बदलता रहता है। इस २ १/२ दण्ड में से पृथ्वीतत्व ५० पल, जलतत्व ४० पल, अग्नि तत्व ३० पल, वायुतत्व २० पल एवं आकाशतत्व १० पल अवस्थान करता है।।१०।।

पार्थिवे चिरकालेन लाभश्चाप्सु क्षणाद्भवेत् ।
जायते पवनात् स्वल्पः सिद्धेऽप्यग्नौ विनश्यति ।।११।।

पृथ्वीतत्व के ५० पल के भीतर प्रश्न करने पर उत्तर होगा कि अनेक देरी से लाभ होगा। जलतत्व के ४० पल के बीच प्रश्नोत्तर होगा शीघ्रलाभ। वायुतत्व के २० पल के बीच प्रश्न का उत्तर होगा अल्प लाभ और अग्नितत्व के ३० पल के बीच किये प्रश्न का उत्तर होगा विनाश।।११।।

वन्हिवायौ कृते प्रश्ने लाभालाभो वदेद् बुधः ।
परतो वारुणे लाभः स्थिरेण च वसुन्धरे ।
ज्ञातव्यं जीवने शून्यं सिद्धो व्योम्नि विनश्यति ।।१२।।

जलतत्वोदय काल में प्रश्न का उत्तर है अन्य से लाभ। पृथ्वीतत्व के समय प्रश्न का उत्तर है कि किसी स्थान से अवश्य लाभ। वायुतत्वोदय के समय प्रश्न का उत्तर है हानि। अग्नितत्वोदय = लाभ। आकाशतत्व = हानि, विनाश।।१२।।

पृथ्वी पञ्च अपां वेदाः गुणस्तेजो द्वे वायुतः ।
नभ एकगुणश्चैव तत्वज्ञानमिदं भवेत् ।।१३।।

पृथ्वीतत्व के ५ गुण। जलतत्व के ४ गुण। अग्नितत्व के ३ गुण। वायुतत्व के २ गुण। आकाशतत्व का १ गुण। होते हैं।।१३।।

(आकाश का गुण शब्द। वायु के दो गुण शब्दस्पर्श। अग्नि के ३ गुण शब्द, स्पर्श

तथा रूप। जल के ४ गुण शब्द स्पर्श, रूप, रस। पृथ्वी के पांच गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)॥१३॥

फूत्कारकृत् प्रस्फुटिता विदीर्णा पतिता धरा ।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्थासदृशं फलम् ।।१४।।

यदि किसी कारण से इन तत्वों को अलग अलग न जाना जा सके तब मुख में जल भरके फूत्कार करते हुये इस जल को ऊपर फुहार की तरह छोड़े। यह जल धरती पर गिरते समय बीच में विविध वर्ण वाले इन्द्रधनुष की रंगत के साथ जमीन पर गिरता है। गिरते समय उससमय जो फूत्काररूपी श्वासवायु इस जल का फुहार बनाती है उस जल में वह रंग अधिक होता है जो तत्व उससमय उदित हो रहा होता है। इस प्रकार से तत्वोदय को पहचान कर प्रश्नगणना करे॥१४॥

भरणी कृत्तिका पुष्या मघा पूर्वा च फल्गुनी ।
पूर्वभाद्रपदा स्वातिस्तेजस्तत्वमिति प्रिये ।।१५।।

हे प्रिये! भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद तथा स्वाति नक्षत्र अग्नितत्वान्तर्गत हैं॥१५॥

विशाखोत्तरफल्गुन्यौ हस्ता चित्रा पुनर्वसुः ।
अश्विनी मृगशीर्षा च वायुतत्वमुदाहृतम् ।।१६।।

विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी, मृगशीर्ष को वायुतत्वान्तर्गत् नक्षत्र कहा गया है॥१६॥

पूर्वाषाढ़ा तथाश्लेषा मूलभार्द्रा च रोहिणी ।
उत्तरभाद्रपदास्तोयतत्त्वं शतभिषा प्रिये ।।१७।।

हे प्रिये! पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रोहिणी, उत्तरभाद्रपद तथा शतभिषा को जलततवान्तर्गत् नक्षत्र कहा है॥१७॥

धनिष्ठा रेवती ज्येष्ठानुराधा श्रवणा तथा ।
अभिजिच्चोत्तराषाढ़ा पृथ्वीतत्वमुदाहृतम् ।।१८।।

धनिष्ठा, रेवती, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् , उत्तराषाढ़ा को पृथ्वीतत्वान्तर्गत् कहा गया है॥१८॥

वहन्नाड़ीस्थितो दूतो यत् पृच्छति शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं सिद्धिमायाति शून्ये शून्यं न संशयः ।।१९।।

जिस नासिका से श्वास प्रवाहित होती है, यदि उसी दिशा से प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करता है, तब सब सुसिद्ध होगा एवं जिस नासिका से श्वास प्रवाहित नहीं हो रही है उस दिशा में यदि प्रश्नकर्त्ता स्थित होकर प्रश्न करता है, तब उसका यह उत्तर होगा कि कार्य निष्फल होगा।।१९।।

तत्वे रामो जयं प्राप्तः सुतत्त्वे च धनञ्जयः ।
कौरवा निहता सर्वे शुद्धे तत्वविपर्यये ।।२०।।

इसी तत्वगुण के कारण राम ने जय प्राप्त किया तथा सुतत्व का आश्रय लेकर अर्जुन को युद्ध में सफलता मिली। तत्व के विपरीत आचरण के कारण कौरवगण युद्ध में मारे गये।।२०।।

जन्मान्तरीयसंस्कारात् प्रसादादथवा गुरोः ।
केषाञ्चिज्जायते तत्वे वासना विमलात्मनाम् ।।२१।।

पूर्वजन्म के पुण्य से अथवा गुरुकृपा से इस स्वरतत्व को जानकर व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करता है।।२१।।

सदाशिव उवाच–

लं बीजं धरणीं ध्यायेत् चतुरस्त्रां सुपीतभाम् ।
सुगन्धं स्वर्णवर्णत्वमारोग्यं देहलाघवम् ।।२२।।

सदाशिव कहते हैं– पृथ्वीतत्व का बीजमंत्र है 'लं'। पृथ्वीतत्व चतुकोणयुक्त, सुन्दरपीतवर्ण, उत्तमगंध वाला तथा स्वर्ण के समान वर्ण वाला है। यह रोगहारी तथा शरीर में हल्कापन लाता है। यद्यपि पृथ्वीतत्व स्वयं भारयुक्त है, तथापि साधकगण देहभार को कम करने के लिये अर्थात् गुरुत्वाकर्षण कम करने के लिये इसका ध्यान करते हैं।।२२।।

वं बीजं वारुणं ध्यायेदर्द्धचन्द्रं शशिप्रभम् ।
क्षुत्पिपासासहिष्णुत्वं जलमध्येषु मज्जनम् ।।२३।।

जलतत्व का बीजमंत्र है 'वं'। इस तत्व का ध्यान है–यह अर्द्धचन्द्राकार, चन्द्रमा के समान, क्षुधा-पिपासा सहने वाली तथा जल में निमज्जन करने वाली शक्ति से युक्त है।।२३।।

रं बीजं शिखिनं ध्यायेत् त्रिकोणमरुणप्रभम् ।
बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ।।२४।।

अग्नि का बीज मंत्र है 'रं'। यह त्रिकोणकृति रक्तवर्ण अनेक अन्न भोजन, पावनवस्तु, धूप तथा अग्नि को सहने वाली क्षमता से युक्त है। यह ध्यान करे।।२३।।

यं बीजं पवनं ध्यायेद्वर्त्तुलं श्यामलप्रभम् ।
आकाशगमनाद्यञ्च पक्षिवद्गमनं तथा ।।२५।।

वायु तत्व का बीजमंत्र है 'यं'। इसका ध्यान यह है – यह वर्त्तुलाकार है, नीला तथा पक्षी के समान आकाशगमन में निपुण है। इस तत्व की कृपा से आकाशगमन की सिद्धि मिलती है।।२५।।

हं बीजं गगनं ध्यायेत् निराकारं बहुप्रभम् ।
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ।।२६।।

आकाशतत्व का बीजमन्त्र है 'हं'। यह तत्व निराकार, नानाप्रकार के वर्णों से युक्त है। यह भूत, भविष्य, वर्त्तमान रूपी त्रिकाल ज्ञान से ओतप्रोत है। इसके ध्यान से आणिमादि समस्त सिद्धियां मिलती हैं।।२६।।

स्वरज्ञानी नरो यत्र धनं नास्ति ततः परं ।
स्वरज्ञानेन गमयेत् अनायासफलं भवेत् ।।२७।।

स्वरतत्व जाननेवाले की तुलना में अन्य कोई धन दुर्लभ नहीं है। अर्थात् स्वरज्ञान परम धन है। इसके प्रभाव से अनायास लाभ प्राप्ति होती है।।२७।।

सर्वञ्च धनमधनंसर्वाधिकारसंयुतम् ।
लक्षैकेन न सिध्यन्ति तत्वहीना यदा नराः ।।२८।।

स्वरतत्व का ज्ञान समस्त धनों में प्रधान है। जिस स्वरतत्वज्ञान से रहित व्यक्ति के पास प्रचुर धन है वह भी असंख्य उपायों द्वारा अभीष्ट साधन नही कर सकता।।२८।।

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिलैः सर्वापि शक्रावनि ,
र्यज्ञानाञ्च कृतं हि कार्यमखिलं देवाश्च सन्तर्पिताः ।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्याऽप्यसौ ,
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ।।२९।।

जिसका मन ब्रह्मविचारण में (स्वरतत्व निर्णय में) क्षणकालार्थ स्थिर है, वह व्यक्ति त्रिलोकी में पूज्य होता है। उसे समस्त तीर्थों में स्नान का तथा सर्वव्यापी यज्ञकार्य द्वारा समस्त देवताओं की तृप्ति कराने का फल मिल जाता है। उसके समस्त पितरगण संसार से पार हो जाते हैं।।२९।।

अध्याय ६

प्राणतत्वं, युद्धप्रकरणञ्च, घातस्थाननिरूपणं,

प्राणतत्वं, युद्धप्रकरणञ्च, घातस्थाननिरूपणं

श्रीदेव्युवाच–

देवदेव महादेव महाज्ञानं स्वरोदयम् ।
त्रिकालविषमज्ञानं कथं भवति शङ्कर ।।१।।

देवी कहती हैं–हे देवदेव, महादेव शंकर! किस प्रकार से स्वरज्ञान त्रैकालिक ज्ञान में (ब्रह्मज्ञान में) तथा महाज्ञान में परिणत होता है॥१॥

ईश्वर उवाच–

अर्थकाण्डं जयप्रश्नं शुभाशुभमिति त्रिधा ।
एतं त्रिकालविज्ञानं नानाद्भवति सुन्दरि ।।२।।

ईश्वर कहते हैं–हे सुन्दरि! स्वरतत्व से अर्थकाण्ड, जयपराजय विषयक प्रश्न, शुभाशुभ निर्णय तथा भूत भविष्य वर्त्तमानात्मक त्रिकाल का ज्ञान होता है॥२॥

तत्वे शुभाशुभं कर्म तत्वे जयपराजयौ ।
तत्वे समार्घ्यमाहार्घ्यं तत्वे त्रिपादमुच्यते ।।३।।

स्वरतत्व द्वारा शुभाशुभ कार्य, जय-पराजय एवं (द्रव्य की) समानमूल्यता निरूपित की जाती है। इस तत्व का तीन पाद है॥३॥

श्रीदेव्युवाच–

देवदेव महादेव सर्वसंसारतारक ।
किं नराणां परं मित्रं सर्वकार्यार्थसाधनम् ।।४।।

देवी जिज्ञासा करती है–हे देवदेव! हे महादेव! हे भवसागर से पार उतारनेवाले! ऐसा कौन परम मित्र मनुष्य जाति के पास है, जिसके द्वारा समस्त कार्य सिद्ध हो सके? कृपया बतलाने का कष्ट करें॥४॥

सदाशिव उवाच–

प्राणएव परं मित्रं प्राणएव परः सखा ।
प्राणतुल्यं परोबन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने ।।५।।

सदाशिव कहते हैं–हे वरानने! प्राण ही मनुष्य वर्ग का परमबन्धु तथा महान् मित्र है। इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ मित्र कोई भी नहीं है॥५॥

देव्युवाच-

कथं प्राणस्थितो वायुर्देहे किं प्राणरूपकं ।
तत्त्वेषु सञ्चरेत् प्राणो जायते योगिभिः कथं ।।६।।

देवी कहती हैं-प्राण का आश्रय लेकर वायु शरीर में कैसे विद्यमान रहती है? किस प्रकार से तत्व समूह में प्राण का संचार होता है? इसकी उपलब्धि योगीगण कैसे करते हैं?।।६।।

सदाशिव उवाच-

कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः ।
भोजने वञ्चने चैव गतिरष्टादशाङ्गुला ।।
प्रवेशे दशभिः प्रोक्ता निर्गमे द्वादशाङ्गुला ।।८।।
गमने च चतुर्विंशा नेत्रवेदास्तु धावने ।
मैथुने पञ्चषष्टिश्च शयने च शताङ्गुला ।।९।।

सदाशिव कहते हैं-नगररूपी शरीर में वायु एक राजा की तरह विराजित है। अब वायुगति इस प्रकार है-

भोजन तथा बातचीत में=श्वासगति बाहर १८ अंगुल, नासिका में जब श्वास भीतर जाती है=श्वास गति भीतर १० अंगुल, नासिका से बाहर श्वास का जाना=बाहर १२ अंगुल, प्राणस्थ वायु की स्वाभाविक बहिर्गति=बाहर १२ अंगुल, चलते-फिरते समय बहिर्गति=२४ अंगुल, दौड़ने में बहिर्गति=३४ अंगुल, मैथुन में बहिर्गति=६५ अंगुल, शयनकाल में बहिर्गति=१०० अंगुल।।९।।

एकाङ्गुलकृते न्यूने प्राणे निस्कामता मता ।
आनन्दस्तु द्वितीये स्यात् कविशक्तिस्तृतीयेके ।।१०।।
वाचःसिद्धिश्चतुर्थे तु दूरदृष्टिस्तु पञ्चमे ।
षष्ठे आकशगमनं चण्डवेगश्च सप्तमे ।।११।।
अष्टमे सिद्धयश्चाष्ठौ नवमे निधयो नर ।
दशमे दशमूर्त्तिश्च छायानाशौ दशैकके ।।१२।।
द्वादशे हंसचारश्श्च गङ्गामृतरसं पिबेत् ।
आनखाग्रे प्राणपूर्णे कस्य भक्षाञ्च भोजन ।।१३।।

मनुष्य की श्वास सामान्यतः १२ अंगुल पर्यन्त बाहर जाती है। जो व्यक्ति ३ से १ अंगुल कम करता है वह निष्कामता प्राप्त करता है। इसी प्रकार
२ अंगुल कम होने पर= आनन्द भोग
३ अंगुल कम होने पर= कवित्व शक्ति
४ अंगुल कम होने पर= वाक्‌सिद्धि
५ अंगुल श्वास कम होने पर= दूरदर्शन शक्ति प्राप्ति
६ अंगुल श्वास कम होने पर= आकाशगमनसिद्धि
७ अंगुल श्वास कम होने पर=अत्यन्त तीव्रगति प्राप्ति
८ अंगुल श्वास कम होने पर= अष्टसिद्धि प्राप्ति
९ अंगुल श्वास कम होने पर=९ निधि प्राप्ति
१० अंगुल श्वास कम होने पर= भगवती की दश मूत्तियों का साक्षात्कार
११ अंगुल श्वास कम होने पर= शरीर की छाया कहीं नहीं पड़ती अर्थात् देवत्व लाभ अमरत्वप्राप्ति

१२ अंगुल श्वास कम होने पर=अर्थात् केवल अन्तर्वर्त्ती श्वास रहने पर परमात्मा से ऐक्य। उनका रोम रोम प्राणवायुमय हो जाता है। इन्हें भोजन की आवश्यकता नहीं होती।

देह के प्राणपूर्ण हो जाने पर भोजन का क्या प्रयोजन रहेगा॥१०-१३॥

एवं प्राणविधिः प्रोक्तः सर्वकार्यफलप्रदः ।
जायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः ।।१४।।

इस प्रकार प्राणवायु का नियम है। प्राणवायु सब कार्य में फल प्रदान करती है। इस प्राणविद्या में गुरु की ही प्रमुखता है। कोटि-कोटि शास्त्रों द्वारा भी प्राणतत्व को प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल गुरु से ही प्राप्त किया जा सकता है॥१४॥

प्रातश्चन्द्रो रविः सायं यदि दैवान्न लभ्यते ।
मध्याह्नान्मध्यरात्राद्वा परतस्तु प्रवर्त्तते ।।१५।।

प्रातः वामनासिका (इड़ानाड़ी) तथा सायंकाल दक्षिण नासिका (पिंगलानाड़ी) उदित होती है। यदि दैववशात् ऐसे उदित न हो, तब मध्याह्नकाल के पश्चात् इड़ा तथा मध्यरात्रि में पिंगला का उदय होता है॥१५॥

दूरयुद्धे जयी चन्द्रः समीपे च दिवाकरः ।
वहन्नाड्यां गतः पादे सर्वसिद्धिः प्रजायते ।।१६।।

वाम नासिका (इड़ा) से श्वास बहते समय युद्ध के लिये दूर निकलने पर जय प्राप्त होती है। परन्तु निकटवर्त्ती युद्ध के लिये पिंगला (दाहिनी नासिका) से श्वास बहते समय निकलने से जय मिलती है। जिधर की ओर श्वास बहते समय निकलना हो उसी तरफ के पैर को पहले बढ़ाना चाहिये॥१६॥

यात्रारम्भे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके ।
शुभकार्येषु सर्वेषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ।।१७।।

यात्रारंभ, विवाह, नगर में प्रवेश आदि शुभ कार्य में वाम नासिका इड़ा से प्राण वायु बहते समय लाभ मिलता है॥१७॥

अयनतिथिदिनेशः स्वीयतत्वेन युक्ता ,
यदि वहति कथञ्चिद्दैवयोगेन पुंसां ।
स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्रस्वरेण ,
प्रभवति न च विघ्नः केशवस्यापि लोके ।।१८।।

जिस अयन जिस तिथि जिस वर में जिस तत्व का उदय हो, यदि उस तत्व से संयुक्त होकर किसी योद्धा की नाड़ी दैवक्रम से प्रवाहित होती है, तब वह योद्धा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। उसकी हुंकार मात्र से शत्रु स्तम्भित हो जाते हैं। यदि वह वैकुण्ठ पर्यन्त भी जाना चाहे तो कोई विघ्न नहीं आता।

उदाहरथार्थ मान लिया जाये कि रविवार कृष्णा तिथि का सूर्योदय है। इस दिन द्वितीय होरा में युद्धयात्रा करना है। शास्त्र के अनुसार यह दाहिनी नासिका पिंगला से प्राण बहने का समय है। विशेषतः रविवार को पिंगला नाड़ी से प्राण बहते समय युद्ध करना प्रशस्त है। दिनाधिपति रवि अग्नि का अधीश्वर है। अतः इस समय यदि दाहिनी नासिका में बह्नितत्व का उदय हो और तब यात्रा करे तब उक्त फल लाभ होगा॥१८॥

जीवलक्ष्यं जीवरक्षां जीवाङ्गे परिधाय च ।
जीवो ब्रजति यो युद्धे जीवो जयति मेदिनीं ।।१९।।

जो योद्धा प्राणवायु के प्रति लक्ष्य रख कर मंत्रादि से प्राणरक्षण करके युद्ध में जाता है, वह समस्म पृथ्वी पर विजय पा लेता है॥१९॥

भूमौ जले च कर्त्तव्यं गमनं शान्तिकर्मसु ।
वह्नौ वायौ प्रदीप्ते तु रवे पुनर्न भवित्यपि ।।२०।।

जल एवं पृथ्वीतत्व के उदय में यात्रा करे। वायु एवं अग्नि के उदय के समय शान्तिकर्म करे। आकाशतत्वोदय के समय कोई कार्य न करे (भगवान का स्मरण करे)॥२०॥

जीवेन शस्त्रं वघ्नीयात् जीवेनैव विकाशयेत् ।
जीवेन प्रक्षिपेत् शस्त्रं युद्धे जयति सर्वथा ।।२१।।

योद्धा जाते समय प्राण वायु का अवलम्बन लेकर तब निकले और प्राणवायु का नियम पालन करके शत्रु की ओर शस्त्र मारे। इससे योद्धा सर्वदा विजयी होता है॥२१॥

आक्रम्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनं ।
समुत्तरेत् पदं दत्त्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।।२२।।

प्राणवायु का सहारा लेकर (नियम मानकर) वाहन यान पर बैठे। जिस नासिका की श्वास प्रवाहित हो रही है, उस ओर का पैर बढ़ाकर वाहन पर बैठना चाहिये। इससे कार्यसिद्धि होती है॥२२॥

अपूर्णं शत्रुसामग्रीं पूर्णं वा स्वबलं यदा ।
कुरुते पूर्णतत्त्वस्थो जयत्येको वसुन्धराम् ।।२३।।

यदि यथायोग्य (जो तत्व युद्ध के समय होना चाहिये उस तत्व के उदयकाल में) तत्वप्रवाह से पूर्ण होकर अपने सैन्य बल का वर्द्धन किया जाय अथवा शत्रु की युद्ध सामग्री को लूटा जाये, तब वह व्यक्ति अकेले ही समस्त पृथ्वी को जीत सकता है॥२३॥

यन्नाड़ी वहते चाङ्गे तस्यामेवाधिदेवताः ।
सम्मुखापि दिशा तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ।।२४।।

जिस नासिका से श्वास बह रही है, उस दिशा का मालिक जो ग्रह है, यदि उस ग्रह की दिशा में मुख करके कोई प्रश्न करे तब उसका कार्य सफल होगा॥२४॥

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चाद्युद्धं समाचरेत् ।
सर्वा मुद्रा कृता येन तेषां सिद्धिर्न संशयः ।।२५।।

योद्धा प्रथमतः बाहु स्फोट, हुंकार, व्यूह रचना आदि मुद्रा करे तब युद्ध करे। इससे युद्ध में विजय प्राप्त होती है॥२५॥

चन्द्रप्रवाहेऽप्यथ सूर्यवाहे भटा समायान्ति च युद्धकामाः ।
समीरणस्तत्त्वविदा प्रयातो या शून्यता सा प्रतिकूलदृष्टा ।।२६।।

इड़ा अथवा पिंगला में वायु पूर्णत: प्रवाहित होने पर उसी दिशा में युद्ध यात्रा करे। इससे सेना जीत जाती है। जिस नाड़ी में वायु का प्रवाह न होता हो उस दिशा में यात्रा करने से पराजय प्राप्त होगी।।२६।।

यद्दिशं वहते वायुर्युद्धं तद्दिशि दापयेत् ।
जयत्येव न सन्देहः शक्रोऽपि यदि नाग्रतः ।।२७।।

जिस दिशा की नाड़ी में श्वास चल रही हो पहले युद्ध में उसी दिशा में आगे बढ़े। ऐसा करने से विपक्ष से आये देवराज इन्द्र भी पराजित हो जाते हैं।।२७।।

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदन्तः प्राणमेव च ।
आकृष्य गच्छेत् कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरं ।।२८।।

जिस नाड़ी (नासिका) से वायु बह रही हो उस से वायु को कान तक खींच कर युद्ध करे। इससे इन्द्र भी पराजित हो जाते हैं।।२८।।

प्रतिपक्षप्रहारेत्यः पूर्णाङ्ग योऽभिरक्षति ।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि हन्यते ।।२९।।

जो योद्धा उक्त कुंभक द्वारा कान तक वायु खींचकर विपक्ष पर प्रहार करते हैं (अपनी आत्मरक्षा करते हैं) बलवान शत्रु भी उसे वश में नहीं कर सकते।।२९।।

अङ्गुष्ठतर्जनी वश्ये पादाङ्गुष्ठस्तथा ध्वनिः ।
युद्धकाले च कर्त्तव्यं लक्षयोद्धा जयी भवेत् ।।३०।।

युद्ध के समय वृद्धांगुलि, तर्जनी तथा पदाङ्गुलि द्वारा क्रमशः बहुस्फोट तथा पादस्फोट करे। इससे लाखों योद्धाओं को पराजित किया जा सकता है।।३०।।

निशाकरे रवौ चारे मध्यो यस्य समीरणः ।
स्थितोरक्षेद् दिगन्तानि जयाकांक्षी नरः सदा ।।३१।।

चन्द्र तथा सूर्य नाड़ी प्रवाह के लिये क्रमशः इनका जो निश्चित समय है उस समय जिस योद्धा की सुषुम्ना नाड़ी चलती है, वह व्यक्ति एक ही स्थान पर स्थित होकर भी सभी दिशाओं की रक्षा कर सकता है।।३१।।

श्वासप्रवेश कालेषु दूतो जल्पति वाञ्छितम् ।
तस्यार्थाः सिद्धिमाप्नोति निर्गमेनैव सुन्दरि ।।३२।।

हे सुन्दरी! नासारन्ध्र में जब (योद्धा की) प्रणवायु प्रविष्ट हो रही हो, उस समय दू

द्वारा प्रश्न किया जाये तब अभीष्ट सिद्धि होगी। यदि उस समय प्राणवायु नासिका से बाहर जा रही हो, तब कार्यसिद्धि नहीं होगी॥३२॥

लाभादीन्यपि कार्याणि पृष्ठानि कीर्त्तितानि च ।
जीवे विशति सिध्यन्ति हानिर्निःसरणे भवेत् ॥३३॥

नासिका में श्वास के प्रवेशकाल में लाभादि कर्म का फल पूछने पर उत्तर होगा कि कार्य सफल होगा। श्वास बाहर जाते समय प्रश्न का उत्तर होगा कि हानि एवं असफलता॥३३॥

सदाशिव उवाच–

नरे दक्षा स्वकीया च स्त्रियां वामा प्रशस्यते ॥३४॥

सदाशिव कहते हैं–पुरुषों का दक्षिण अंग तथा स्त्रीगण का वाम अंग प्रशस्त है॥३४॥

कुम्भकं युद्धकाले च तिस्रो नाड्यश्च या गतिः ॥३५॥

युद्धकाल में इड़ा-पिंगला तथा सुषुम्ना को रोककर कुम्भक करे॥३५॥

हकारस्य सकारस्य बिना भेदं स्वरः कथम् ।
सोऽहं हंसः पदेनैव जीवो जपति सर्वदा ॥३६॥

हं तथा सः अर्थात् हंसःचार का भेद जो नहीं जानता, उसे स्वरतत्व कैसे सिद्ध होगा? श्वास भीतर जाते समय 'हं' की तथा प्राण बाहर जाते समय 'सः' की ध्वनि होती है। प्रकृति देवी का मंत्र हंसः तथा पुरुषदेवता (शिव) का मंत्र सोऽहं इन दो का जप होता है। श्वास से हंसः तथा स्पन्दन से सोऽहं इन दो का जप जीव सदा करता है॥३६॥

शून्याङ्गं पूरितं कृत्वा जीवाङ्गं गोपयेद्यदि ।
जीवाङ्गे घातमाप्नोति शून्याङ्गं रक्ष्यते सदा ॥३७॥

युद्धकाल में जिस नासिका से वायु नहीं बह रही हो उसे प्राण वायु जनित कुभंक क्रिया से पूर्ण करके प्राण रक्षा करना चाहिये। जब आघात हो, तब श्वास से भरे अंग पर उसे सहे और इस प्रकार श्वास (प्राण) वायु रहित अंग की रक्षा करे॥३५॥

वामे वाप्यथवा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः ।
तत्र घातो न जायते शून्ये घातं विनिर्दिशेत् ॥३८॥

स्वरतत्व जानने वाले विद्वान के वाम अथवा दक्षिण भाग की ओर बैठकर प्रश्न करने से यह उत्तर होगा कि विद्वान की जिस नासिका से श्वास चल रही है उस ओर के अंग पर प्रश्नकर्त्ता को चोट नहीं पहुँचेगी। प्रत्युत दूसरी ओर के अंगों पर चोट आयेगी॥३८॥

भूतत्त्वे चोदरे घातः पादस्थानेऽम्बुना भवेत् ।
उरस्थानेऽग्नितत्वेच करस्थाने च वायुना ।।३९।।
शिरसि व्योमतत्वेन कृतआघातनिर्णयः ।
एवं पञ्चविधो घातः स्वरशास्त्रे प्रकाशितः ।।४०।।

पृथ्वी तत्व के उदय के समय प्रश्न का उत्तर होगा कि उदर में आघात प्राप्त होगा। अग्नितत्व के उदय के समय वक्ष में आघात होगा। वायुतत्व के उदय के समय हाथों में, जलतत्व के उदय के समय चरणों में आघात प्राप्त होगा। आकाश तत्व के उदयकाल में प्रश्न पूछते समय उत्तर होगा कि मस्तक पर आघात प्राप्त होगा। इस प्रकार पंचतत्वानुसार पांच स्थान पर आघात की बात स्वरशास्त्र में कहा गया है॥३९-४०॥

युद्धकाले तदा चन्द्रः स्थायी जयति निश्चितम् ।
यदा सूर्यप्रवाहस्तु वादी विजयते तदा ।।४१।।

प्रश्नकर्त्ता की यदि युद्धकाल में इड़ा नाड़ी प्रवाहित हो तब स्वराजस्थ राजा एवं योद्धा जय प्राप्त करेंगे। पिंगला में प्राण प्रवाह होने पर विपक्ष की विजय होगी॥४१॥

जयोमध्ये तु सन्देहो नाड़ीमध्ये तु लक्षयेत् ।
सुषुम्नायां गतः प्राणः समरे शत्रुसङ्कटे ।।४२।।
यस्यां नाड्यां भवेच्चारस्तादृशं युद्धमाश्रयेत् ।
तेनासौ जयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।।४३।।

जयपराजय की संशयात्मक स्थिति में नाड़ीगत (नासिका गत्) प्राणप्रवाह को देखे। सुषुम्ना नाड़ी चलने पर शत्रु संकट तथा मृत्यु। जब जिस नाड़ी में प्राण प्रवाह हो रहा हो उसी ओर युद्ध करे। इससे अवश्य विजय प्राप्त होगी॥४२-४३॥

यदि संग्रामकाले तु वामनाड्यां सदा बहेत् ।
स्थायिनो विजयं विन्द्ययात् रिपुवश्यादयोऽपि च ।।४४।।

यदि युद्ध के समय सदैव इड़ा नाड़ी चले तब योद्धा की विजय होती है और शत्रुगण वशीभूत हो जाते हैं॥४४॥

यदि संग्रामकाले तु सूर्यस्तु ब्यावृतो बहेत् ।
तथा यायी जयं विन्द्यात् सदेवासुरमानवात् ।।४५।।

यदि युद्धकाल में बराबर दाहिनी नासिका (पिंगला) से श्वास आवर्तगतिरूपेण प्रवाहित होती रहे तब देव-दानव भी योद्धा को पराजित नहीं कर सकते।।४५।।

रणे हरति शत्रुस्थं वामायां प्रविशेन्नरः ।
स्थानं द्विधावचाराभ्यां जय सूर्योण धावति ।।४६।।

युद्ध के समय योद्धा की वाम नासिका से वायु प्रवेश करने से वह शत्रु को पराजित कर देता है और इसी प्रकार बायीं नासिका से प्राण बाहर जाते समय भी उसे विजय मिलती है।।४६।।

योधद्वयकृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमोजयः ।
रिक्तं चैव द्वितीयस्तु जयी भवति नान्यथा ।।४७।।

जब दो योद्धा जयपराजय के बारे में साथ प्रश्न करे तब प्रश्न पूछनेवाला जिस दिशा की ओर मुख करके प्रश्न कर रहा है, उस दिशा की ओर की नासिका से यदि वायु बह रही है तब प्रथम योद्धा जयी होगा। दूसरी ओर की नासिका से प्राणवायु उस समय बह रही हो तब द्वितीय योद्धा की विजय होगी।।४७।।

पूर्णनाड़ीगतः पृष्ठे शून्याङ्गञ्च तदग्रतः ।
शून्यस्थाने कृतः शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ।।४८।।

दैवज्ञ के पीछे की ओर से शत्रु के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर यदि उस समय दैवज्ञ की दाहिनी नासिका से प्राणवायु बह रही हो तब, शत्रु की मृत्यु होगी, यह उत्तर होगा। इसी प्रकार यदि दैवज्ञ के सामने बैठा प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे और उस समय दैवज्ञ की वाम नासिका से प्राणवायु न बह रही हो तब भी शत्रु की मौत होगी।।४८।।

वामाचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत् ।
पृच्छको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः ।।४९।।

जयपराजय के सम्बन्ध में प्रश्न के समय यदि दैवज्ञ की इड़ा नाड़ी (बायीं नासिका) से श्वास भीतर जा रही हो और यदि योद्धा का नाम सम अक्षरों में है, तब उसे जय मिलेगी। यदि प्रश्नकाल में दाहिनी नासिका (पिंगला) से प्राण भीतर जा रहा हो और योद्धा का नाम विषमाक्षर का हो, तब भी योद्धा विजयी होगा।।४९।।

यदा पृछति चन्द्रस्थस्तदा सन्धानमादिशेत् ।
पृच्छेद् यदा च सूर्यस्थस्तदा जानीहि विग्रहे ।।५०।।

प्रश्नकाल में दैवज्ञ की वाम नासिका से प्राण बह रहा हो तब युद्ध में सन्धि होगी। उस समय दैवज्ञ की दाहिनी नासिका से प्राण बह रहा हो, तब युद्ध होगा।।५०।।

पार्थिवे च भवेद् युद्धं सन्धिर्भवति वारुणे ।
वन्हौ युद्धे जयो भङ्गो मृत्युर्षायौ च नाभसे ।।५१।।

प्रश्नकाल में दैवज्ञ का पृथ्वीतत्व उदित हो तब संग्राम होगा। जल तत्वोदय हो तव सन्धि होगी। अग्नि तत्व उदित होने से युद्ध में जय तथा वायुतत्वोदय देने से युद्धभंग होगा। आकाशतत्व के उदय से विनाश होगा।।५१।।

सदाशिव उवाच–

नैमित्तिकप्रमादाद्वा यदा न ज्ञायतेऽनिलः ।
प्रश्नकाले तदा कुर्याद्द्वन्द्वं यत्नेन बुद्धिमान् ।।५२।।

सदाशिव कहते हैं–यदि प्रश्नकाल में यह ज्ञात न हो सके कि वायुतत्व प्रवाहित हो रहा है अथवा नहीं, तब दो कार्य बुद्धिमान व्यक्ति यत्नपूर्वक करे।।५२।।

निष्फलां धारणां कृत्वा पुष्पं हस्तात् निपातयेत् ।
पूर्णाङ्गे पुष्पपतनं शून्ये वा तत्फलं वदेत् ।।५३।।

अपनी निष्फलता की धारणा करके (यह धारणा करके कि पंचतत्व ज्ञान नहीं हो पा रहा है) एक फूल अंजलि में लेकर ऊर्ध्व में फेंके। जिस ओर फूल गिरा है, यदि उस ओर की नासिका रन्ध्र से वायु बह रहा हो, तब उस ओर का वर्णित फल प्राप्त होगा। यदि उस ओर की नासिका से प्राणवायु नहीं बह रहा हो, तब उस ओर का वर्णित फल प्राप्त होगा।।५३।।

तिष्ठन्नुपविशन् वापि प्राणमाकर्षयेन्निजं ।
मनोभङ्गमकुर्वाणः सर्वकार्येषु पूजितः ।।५४।।

खड़े होकर अथवा बैठकर एकान्त मनोयोग पूर्वक प्राण का आकर्षण करना स्वरततत्वज्ञ का कर्तव्य है। इससे उस व्यक्ति का सभी कार्य पूर्ण होता है।।५४।।

न कालो विविधं घोरं न शस्त्रं न च पन्नगाः ।
न शत्रुर्व्याधिचौराद्याः शून्यस्थं नाशितुं क्षमाः ।।५५।।

जिधर अवस्थित होकर पृच्छक प्रश्न करे और यदि उस समय दैवज्ञ की उस ओर की नासिका प्रवाहित न हो तब प्रश्नकर्त्ता का बुरा समय है। नानारूप भयंकर घटना, अस्त्र-शस्त्र, सर्प, शत्रुभय, चोर, प्रभृति को वह नष्ट नहीं कर सकेगा।।५५।।

जीवेन स्थापेयद्वायुं जीवेनारम्भयेत् पुनः ।
जीवेन क्रियते नित्यं द्यूतं जयति सर्वदा ।।५६।।

प्राणवायु द्वारा हृदय में वायु को निबद्ध करके प्राणद्वारा कुंभक प्रारंभ करे। जो व्यक्ति इस प्रकार प्राण का अवलम्बन लेकर द्यूतक्रीड़ा अथवा युद्ध करेगा उसे विजय मिलेगी।।५६।।

कथञ्चित् विजयी युद्धे स्वरज्ञानं बिना नृपः ।
स्वरज्ञानबलादग्रे सफलं कोटिधा भवेत् ।।५७।।
इहलोके परत्रैव स्वरज्ञानी बली सदा ।
दशशतायुतं लक्षं देशाधिपबलं क्वचित् ।
शतक्रतुसुरेन्द्राणां बलं कोटिगुण भवेत् ।।५८।।

स्वरज्ञान रहित राजा कैसे युद्ध में जयी होगा?

स्वरोदय सार–जान लेने पर समस्त कार्य करोड़ों प्रकार से सफल हो जाते हैं। स्वरतत्ववेत्ता इस लोक में तथा परलोक में सदा शक्तिसम्पन्न हो जाते हैं। सहस्त्र अयुत अथवा लाखों सैन्य तथा राजा में जो शक्ति होती है, उनसे भी अधिक शक्ति स्वरज्ञानी योगी में होती है। उसमें देवराज इन्द्र से भी कोटि गुणित बल होता है।।५७-५८।।

ॐकारः सर्ववर्णानां ब्रह्माण्डे भास्करो यथा ।
मर्त्यलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ।।५९।।

जैसे समस्त वर्णों में 'ॐ' श्रेष्ठ है, जैसे ब्रह्माण्ड में भास्कर प्रधान हैं, वैसे ही इस लोक में स्वरज्ञानी श्रेष्ठ है।।५९।।

एकाक्षरप्रदातारं नाड़ीभेदनिवेदकम् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चानृणी भवेत् ।।६०।।

इस शास्त्र की शिक्षा देनेवाले गुरु हैं जो समस्त नाड़ी के विवरण का ज्ञान प्रदान करते हैं। ऐसा कोई द्रव्य पृथ्वी पर नहीं है जिसे देकर शिष्यगण स्वरज्ञानी गुरु के ऋण से मुक्त हो सकें।।६०।।

देव्युवाच-

परस्परं मनुष्याणां युद्धे प्रोक्तो जयस्तथा ।
यमयुद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथं जय: ।।६१।।

आपने मनुष्यों में हो रहे युद्ध तथा जयपराजय का वर्णन किया। अब यह कृपापूर्वक कहें कि यम के साथ अर्थात् पीड़ा रोग आदि होने पर कैसे उस पर जय प्राप्त की जाये?॥६१॥

ईश्वर उवाच-

ध्यायेद्देवं स्थिरे जीवे जुहूयाज्जीवसङ्गमे ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयो भवेत् ।।६२।।

ईश्वर कहते हैं-प्राणवायु को कुंभक द्वारा निश्चल करे। अब तत्वरूपी ब्रह्म का ध्यान करे। प्राणवायु में तत्वसमूह का परस्पर सम्मिलन करे। इससे इष्टसिद्धि, परमलाभ, युद्ध में जय आदि मिलती है॥६२॥

निराकारात् समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् ।
तत् साकारं निराकारे ज्ञाने भवति तन्मयं ।।६३।।

साकार ब्रह्माण्ड तो निराकार ब्रह्म से उत्पन्न है। अत: निराकार ब्रह्मस्वरूप का स्वरूप अवगत होते ही समस्त ब्रह्माण्ड का साकार ब्रह्ममय साक्षात्कार होने लगता है॥६३॥

●

अध्याय ७

देवीवशीकरणं, गर्भप्रकरणं, संवत्सरप्रकरणं, रोगप्रकरणं, कालज्ञानं फलश्रुति

देवीवशीकरण, गर्भप्रकरणं, संवत्सरप्रकरणं, रोगप्रकरणं, कालज्ञानं फलश्रुति

श्रीदेव्युवाच–

नरयुद्धं यमयुद्धं स्वयं प्रोक्तं महेश्वर ।
इदानीं देवदेवीनां वशीकरणकं वद ।।१।।

देवी कहती हैं–हे महेश्वर! आपने यमयुद्ध तथा नरयुद्ध के सम्बन्ध में कहा। अब देव-देवी को वश में करने की विधि का वर्णन करिये।।१।।

ईश्वर उवाच–

चन्द्रं सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमण्डले ।
आजन्मवशगा वामा कथितोऽयं तपोधनैः ।।२।।

ईश्वर कहते हैं सूर्य (पिंगला) नाड़ी द्वारा चन्द्र नाड़ी (इड़ा) का आकर्शण करे। उसे हृदय में स्थापित करे। इस प्रकार की साधना से नायिका चिरकाल के लिये वशीभूत हो जाती है। अर्थात् अधःस्थ अपान के बल से उर्ध्वस्थ प्राणवायु का आकर्षण करके उसे सुषुम्ना में लाकर मुद्रा तथा कुंभक द्वारा स्थापित करने से वामा स्त्री (कुण्डलिनी) चिरकाल के लिये वशीभूत हो जाती है (कौलाचार्यों के अनुसार अपने शुक्र को लिंग द्वारा स्त्री योनि से आकृष्ट करके स्वाधिष्ठान में रक्षित करने से कुलकुण्डिलिनी वशीभूत हो जाती है।)।।२।।

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते ।
जीवस्थाने गतो जीवो बाला जीवान्तवश्यकृत् ।।३।।
चन्द्रं पिबति सूर्येण सूर्यं पिबति चन्द्रतः ।
अनोन्यकालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकं ।।४।।

इड़ा को पिंगला में तथा पिंगला को इड़ा में लाने की शक्ति होने पर जबतक पृथ्वी पर चन्द्र तारक की स्थिति है, तबतक जीवित रहा जा सकता है।।३-४।।

एतज्जानाति यो योगी एतत् पठति नित्यशः ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वाञ्छितं फलम् ।।५।।

जो योगी इस नाड़ी चालन क्रिया को जानते हैं, तथा स्वरशास्त्र का अध्ययन नित्य करते हैं, वे समस्त दुःखों से मुक्त होकर अभिलषित फल प्राप्त करते हैं।।५।।

सीवनी बहते नाड़ी तन्नाड़ीबोधनं कुरु ।
करे बद्धा सपदाग्रं जरणं जयते बुधाः ।।६।।

काया के अधोभाग में सीवनीनाड़ी प्रवाहित है। पादगुल्फ द्वारा (एड़ियों द्वारा) इस नाड़ी को दबाकर रखे अर्थात् एड़ियों से लिंग स्थान को दृढ़ता से दबाकर बैठे। और अपने ऊपरी पैर की एड़ी को दृढ़तापूर्वक हाथ से पकड़े। इससे चिरयौवन प्राप्त होता है।।६।। यही महामुद्रा है। कहीं कहीं इस श्लोक के स्थान पर यह श्लोक अंकित मिलता है-

(शशिनं बहते नाड़ी तन्नाड़ीरोधनं कुरु ।
करे बद्धा स्वमेढ्रञ्च जरणं जायते बुधाः ।।)
उदयोः कुम्भकं कृत्वा मुखे श्वासं निलीयते ।
निश्चला च यदा नाड़ी देवकन्या वशं कुरु ।।७।।

जिन्होंने मूत्राशय स्थित नाड़ीद्वय को बन्द करके कुंभक योग से मुख द्वारा श्वास खींचकर नाड़ी को निश्चिल करके साधनरत हैं, वे देवकन्याओं को भी वशीभूत कर लेते हैं।।७।।

रात्रौ च यामबेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने ।
ब्रह्मबीजं पिबेद्यस्तु बाला जीवहरो नरः ।।८।।

संसारमोहान्धकार युक्त जीवन के लिये कालरूप मोहरात्रि में बाल्य-यौवन,प्रौढ़ तथा वार्द्धक्य ये चार प्रहर होते हैं। इसमें प्रथम प्रहर गत होने पर यौवन आता हैं। ऐसे समय कुलकुण्डलिनी रूपी बाला सोई रहती है। जो योनिमण्डल से ब्रह्मबीजरूप रजः का पान करते हैं। अर्थात् मूलाधार स्थित ब्रह्म प्राप्ति के बीज रूप मूल मंत्र की ध्यान धारणा करते हैं, वे कुण्डलिनी रूपी बाला को वशीभूत कर लेते हैं। अर्थात् उनसे कुलकुण्डलिनी प्रसन्न हो जाती हैं।।८।।

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन् काले ऋतौ सति ।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी ।।९।।

जब ऋतुकाल प्रारम्भ होता है, तभी पुरुष अष्टाक्षर मंत्र (जो गुरुगम्य है) पढ़ते हुये स्त्री के योनि में लिंग तथा शुक्र प्रक्षेपण करे। इससे स्त्री मोहग्रस्त तथा मोहावष्टि हो जाती है।।९।।

शयने वा प्रसङ्गे वा गमने भोजनेऽपिवा ।
यः सूर्येण पिवेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः ।।१०।।

स्त्री के शयन के समय कथावार्त्ता करते करते, भोजन करते करते अथवा सहवास

करते करते स्त्री के रज: तथा अपने शुक्र को अपनी लिंग से खींच सकते हैं, वे साक्षात् कामदेव के समान स्त्रीगण के प्रिय हो जाते हैं॥१०॥

शिवमालिङ्गिते शक्तया प्रसङ्गे दक्षिणेपि वा ।
तत्क्षणाद् दापयेदस्तु मोहयेत् कामिनीशतं ।।११।।

यदि संभोग-काल में दाहिनी नासिका से प्राणप्रवाह होते समय,पुरुष स्त्री का आलिंगन करे। तब इस प्रकार करने से पुरुष सैकड़ों स्त्री को मोहित कर सकता है॥११॥

सप्तनवत्रयं पञ्चवारान् सुरते सूर्यगे ।
चन्द्रे द्वितुर्यषट्कृत्वा वश्या भवति कामिनी ।।१२।।

सुरतकाल में पिंगलानाड़ी दाहिनी नासिका की श्वास चलते यदि पुरुष प्रतिदिन ३,५,७ या ९ बार और वाम नासिका से प्राण चलते समय २-३ और छः बार अपने लिंग से नारी संग करे तो वह नारी वशीभूत हो जाती है॥४॥

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्ताधरौष्ठयोः ।
महापद्मे मुखं स्पृष्ट्वा वारं वारमिदं चरेत् ।।५।।
आघ्राणमेति पद्मस्य यावन्निद्रावशङ्गता ।
पश्चाज्जाग्रतबेलायां चोष्यते गलचक्षुषी ।
अनेन विधिना कामी वशयेत् सर्वकामिनीं ।
इदं न वाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा परमेश्वरि ।।६।।

इस श्लोक का अर्थ नहीं दिया जा रहा है।

अथ गर्भप्रकरणं

सदाशिव उवाच–

ऋतुकालभवा नाड़ी पञ्चमेऽह्नि यदा भवेत् ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगे सेवनात् पुत्रसम्भवः ।।७।।

सदाशिव कहते हैं–

ऋतुकाल के पांचवें दिन यदि रज: और शुक्र मिश्रित हों तब पुत्रजन्म संभव होता है॥७॥

शङ्खवल्ली गवां दुग्धं पृथ्व्यापोवहते यदा ।
भर्त्तुरग्रे वदेद्वाक्यं गर्भं देहि त्रिभिर्वचः ।।८।।

ऋतुस्नाता पिवेन्नारी ऋतुदानञ्च योजयेत् ।
रूपलावण्यसम्पन्नो नरसिंहः प्रसूयते ।।९।।

ऋतुस्नाता स्त्री पृथ्वीतत्त्व अथवा जलतत्व के उदयकाल में शंखवल्ली तथा गाय के दूध को (एक में पकाकर) पी जाये और पति से तीन बार 'गर्भं देहि' वाक्य कहे। इससे वह नारी रूपवान महाबली नरसिंह ऐसा पुत्र प्रसव करती है।।९।।

सुषुम्ना सूर्यगन्धेन ऋतुदानञ्च योजयेत् ।
अङ्गहीनः पुमान् यस्तु जायते कृशविग्रहः ।।१०।।

जब सुषुम्नागत प्राण हो उस समय जब क्षण के लिये दक्षिण नासिका में प्राण प्रवाह हो (सुषुम्ना स्थिति में क्षण में वाम तो क्षण में दक्षिण नासा से प्राणप्रवाह बदलता रहता है) उस समय गर्भ ठहरने से अंगहीन एवं कृशकाय पुत्र उत्पन्न होता है।।१०।।

विषमाङ्के दिवारात्रौ विषमाङ्के दिनाधिपः ।
चन्द्र नेत्राग्नितत्वेषु बन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ।।११।।

कृष्णपक्ष में रविवार की दिनरात्रि में सूर्यनाड़ी में जब प्राण बहता हो उस समय पृथ्वी, जल अथवा अग्नि तत्वोदय होने पर वन्ध्या को भी गर्भ हो जाता है।।११।।

ऋत्वारम्भे रविः पुसां निषेकान्ते सुधाकरः ।
अनेन क्रमयोगे न नादत्ते दैवदण्डकः ।।१२।।

स्त्रीप्रसंग आरम्भ होने पर पुरुष की दाहिनी नासिका से तथा प्रसंग समाप्त होने पर वाम नासिका से श्वास प्रवाहित होनी चाहिये। अन्यथा यह क्रम भंग हो जाने पर दैव ही दण्ड देता है, अर्थात् पुत्र नहीं होता।।१२।।

सङ्गारम्भे रविः पुंसां स्त्रियाञ्चैव सुधाकरः ।
उभयो सङ्गमे प्राप्ते वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ।।१३।।

प्रसंग प्रारंभ होने पर स्त्री की बायीं नासिका से तथा पुरुष की दाहिनी नासिका से प्राण बहना चाहिये। ऐसे संगम से वन्ध्या भी पुत्रवती हो जाती है।।१३।।

चन्द्रनाड़ी वहेत् प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत् ।
सूर्ये भवेत्तदा पुत्रः शून्ये गर्भो निहन्यते ।।१४।।
चन्द्रे स्त्री पुरुषः सूर्ये मध्यमार्गे नपुंसकः ।
गर्भप्रश्ने यदा दूतस्तदा पुत्रं प्रजायते ।।१५।।

यदि प्रश्नकर्ता के प्रश्न करते समय दैवज्ञ की श्वास वाम नासिका (इड़ा) से चल रही होती है तब गर्भ में कन्या है और यदि दाहिनी ओर नासिका (पिंगला) से श्वास चल रही हो तब गर्भ में पुत्र है। जब दोनों से (सुषुम्ना) समान रूपेण श्वास चले, तब उतर दे कि गर्भ में नपुंसक है।।१४-१५।।

पृथ्व्यां पुत्री जले पुत्रं कन्यकां तु प्रभञ्जने ।
तेजसा गर्भपातः स्यान्नभस्यपि नपुंसकः ।
शून्ये शून्यं युग्मे युग्मं गर्भपातञ्च संक्रमे ।।१६।।

दैवज्ञ का पृथ्वी तत्वोदय होने पर प्रश्नकर्त्ता द्वारा प्रश्न किये जाने का उत्तर देना होगा कि गर्भ में पुत्री है। जल तत्व के समय प्रश्न का उत्तर होगा कि गर्भ में पुत्र है। वायु तत्व के समय कन्यागर्भ होगा। अग्नि तत्व के उदयकाल में प्रश्न का उत्तर होगा कि गर्भपात होगा। आकाशतत्वोदय काल के प्रश्न का उत्तर होगा नपुंसक सन्तान। शून्यानाड़ी काल के प्रश्न का उत्तर है कि गर्भ में कुछ नहीं है। युग्म नाड़ी काल में किये प्रश्न का उत्तर है जुड़वा सन्तान। नाड़ी सन्धि के समय किये प्रश्न का उत्तर है गर्भपात होगा।।१६।।

सूर्यभागे कृते पुत्रश्चन्द्रचारेतु कन्यका ।
विषुवे गर्भपातः स्याद्भावी वाथ नपुंसकः ।
तत्वैरथ विजानीयात् कथिता तत्तु सुन्दरि ।।१७।।

दैवज्ञ की पिंगला (दाहिनी नासिका) से श्वास उदय के समय किये प्रश्न का उत्तर होगा पुत्र। इड़ा में श्वासोदय के समय के प्रश्न का उत्तर होगा कन्या। सुषुम्ना नाड़ी काल के समय का उत्तर होगा नपुंसक सन्तान अथवा गर्भपात। हे सुन्दरी! इस प्रकार से स्वरतत्वशास्त्र को जानो।।१७।।

गर्भधाननियमः

गर्भाधानं मारुतेस्याच्च दुःखी ,
दिशा ख्यातोवारुणे सौख्ययुक्तः ।
गर्भस्त्रावी स्वल्पजीवी च वन्हौ ,
भोगी भव्यः पार्थिवेनार्थयुक्तः ।।१८।।

वायुतत्वोदय के समय गर्भाधान = चिरदुःखी सन्तान

जलतत्वोदय के समय गर्भाधान = महासुखी कीर्तिमान सन्तान
अग्नितत्वोदय के समय गर्भाधान =गर्भपात अथवा जल्दी मृत्यु प्राप्त होनेवाली सन्तान, पृथ्वीतत्वोदय के समय गर्भाधान = सुखी, सौभाग्यवान सन्तान॥१८॥

धनवान् सौख्यसंयुक्तो भोगवान् गर्भसंस्थितः ।
स्यान्नित्यं वारुणे तत्वे व्योम्नि गर्भो निहन्यते ।।१९।।

जलतत्वोदय के समय गर्भाधान= सुखी, धनी भोगी सन्तान, आकाशतत्वोदय के समय गर्भाधान = गर्भहानि॥१९॥

माहेये च सुतोत्पत्तिर्वारुणे दुहिता भवेत् ।
शेषेषु गर्भहानिः स्याज्जातमात्रस्य वा मृतिः ।।२०।।

पृथ्वीतत्वोदय में गर्भाधान=पुत्र
जलतत्वोदय में गर्भाधान=कन्या
अग्नितत्वोदय में गर्भाधान=गर्भपात अथवा अल्पजीवी सन्तान
वायुतत्वोदय में गर्भाधान=गर्भपात अथवा अल्पजीवी सन्तान
आकाशतत्वोदय में गर्भाधान=गर्भपात अथवा अल्पजीवी सन्तान

रविमध्यगतश्चन्द्रश्चन्द्रमध्यगतो रविः ।
ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं न विद्या शास्त्रकोटिभिः ।।२१।।

इस शास्त्र द्वारा रविमध्यगत चन्द्र तथा चन्द्र मध्यगत रवि के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। यह महाविद्या गुरु के द्वारा ही प्राप्त होती है। करोड़ों शास्त्रों से भी यह विद्या नहीं मिल सकती॥२१॥

अथसंवत्सरप्रकरणम्

सदाशिव उवाच–

चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रातस्तत्वविभेदतः ।
पश्येद्विचक्षणोयोगी दक्षिणे चोत्तरायणे ।
चन्द्रस्योदयवेलायां वहमानोऽथ तत्वतः ।।२२।।

चैत्रमास की शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के समय अर्थात् चंद्र वत्सर के आरंभ काल में दक्षिणायन एवं उत्तरायण के प्रारंभकाल में प्रभात में विचक्षण व्यक्ति तत्वों का निर्णय करके देखे कि इड़ानाड़ी के उदय काल में (इड़ा में प्राण चालन प्रारंभ होते समय) किस तत्व का उदय हुआ है। (इसके द्वारा पूरे संवत्सर का अपने लिये भी फलादेश हो सकता है)॥२२॥

पृथिव्यांपस्तथा वायुः सुभिक्षां सर्वशस्यजं ।
तेजोव्योम्नि भयं घोरं दुर्भिक्षं कालतत्वतः ।।२३।।

यदि उस समय पृथ्वी, जल, अथवा वायुतत्व का उदय हुआ हो, तब धरती अन्न से पूर्ण होती है। अन्न का राज्य में संग्रह हुआ रहता है। यदि इस समय अग्नि अथवा आकाशतत्व का उदय हुआ हो, तब पृथ्वी में भयंकर अकाल एवं भय उपस्थित हो जाता है।।२३।।

एवं तत्कालं ज्ञेयं वर्षे मासे दिने तथा ।
पृथिव्या दिक्तत्वेन दिनमासाब्दजं फलं ।
शोभनञ्च तथा दुष्टं व्योममारुतवन्हिभिः ।।२४।।

इसी प्रकार वर्ष, मास तथा दिन का तत्वोदय देखकर फल ज्ञान किया जा सकता है। इनके शुभाशुभ फल को तत्वों के द्वारा निरूपित किया जा सकता है।।२४।।

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा च सर्वकर्मसु ।
देशभङ्गमहारोगक्लेशकष्टातिदुःखदा ।।२५।।

यदि उस समय सुषुम्ना नाड़ी प्रारंभ भई हो, तब समस्त कर्म क्रूर तथा अशुभ फलदायक होते हैं और राष्ट्र विप्लव, महापीड़ा और कष्ट में पड़ जाता है।।२५।।

मेषसंक्रान्तिदिवसे स्वरभेदं विचारयेत् ।
सम्वत्सरफलं ब्रूयाल्लोकानां तत्वचिन्तकः ।।२६।।

तत्वचिन्तन करनेवाले समर्थ की मेष संक्रान्ति लगते समय जो तत्व उदित हो उसके विचार द्वारा पूरे वर्ष का फल कह सकते हैं।।२६।।

सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिः स्याद् बहुशस्या वसुन्धरा ।
बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्वं वहेद् यदि ।।२७।।

यदि मेष संक्रान्ति लगते समय उस क्षण दैवज्ञ का पृथ्वीतत्व उदित हो तब सुभिक्ष, राष्ट्रवृद्धि, हरी-भरी प्रचुर कृषि, प्रचुर बारिश तथा सुख का उस वर्ष संचार होता है।।२७।।

अतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च ।
बहुशस्य तथा पृथ्वी जलतत्वं वहेद् यदि ।।२८।।

उस क्षण जलतत्व का उदय होने पर अतिवृष्टि, सुभिक्ष, आरोग्य, सुख, प्रचुरकृषि की प्राप्ति होती है।।२८।।

दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गः स्याद्रोगोत्पत्तिस्तु दारुणा ।
अल्पादल्पतरा वृष्टिरग्नितत्वं वहेद् यदि ।।२९।।

उस समय अग्नितत्वोदय का परिणाम होगा उस वर्ष अकाल, राज्यनाश, दारुणरोग, कम वर्षा।।२९।।

उत्पातोपद्रवाभीतिरल्पा वृष्टिः स्युरीतयः ।
मेषसंक्रान्तिबेलायां वायुतत्वं वहेद् यदि ।।३०।।

मेष संक्रान्ति लगने के क्षण में दैवज्ञ का वायुतत्व उदित होने पर उत्पात, उपद्रव, भय, अल्पवृष्टि अथवा अतिवृष्टि जैसे विपर्यय घटित होते हैं।।३०।।

उद्गारतापज्वरांभीतिरल्पा वृष्टिक्षितौ भवेत् ।
मेषसंक्रान्तिबेलायां व्योमतत्वं वहेद् यदि ।
तत्रापि शून्यता ज्ञेया शस्यादीनां सुखस्य च ।।३१।।

मेषसंक्रान्ति लगने के क्षण में यदि दैवज्ञ का आकाशतत्व उदित हो तब मनुष्य उद्गार, सन्ताप, ज्वर, भय तथा क्लेश ग्रसित रहेंगे और अल्पवृष्टि के कारण कृषि उत्पादन नहीं के बराबर होगा।।३१।।

पूर्णे प्रवेशेन श्वासे स्वस्वतत्वेन सिद्धिदः ।।३२।।

जिस नासिकारंध्र से श्वास प्रवेश करे उसी समय तत्व के उदय होने पर (अनुकूल तत्व का उदय होने पर) उस वर्ष में कार्यसिद्धि होगी।।३२।।

सूर्ये चन्द्रेऽन्यथाभूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः ।
विषमे वह्नितत्वस्य ज्ञायते केवलं नभः ।
तत् कुर्याद्वस्तुसंग्राह्यं द्विमासे च महार्घ्यता ।।३३।।

मेषसंक्रान्ति लगने के क्षण में यदि सूर्य अथवा चन्द्रनाड़ी बहने का तारतम्य ठीक न हो अर्थात् जब सूर्यनाड़ी बहनी चाहिये तब चन्द्रनाड़ी बहे, अथवा चन्द्र नाड़ी के समय सूर्य नाड़ी बहे, तब उस समय जानकर यथायोग्य शीघ्र अन्नादि का संग्रह कर लेना चाहिये। सूर्यनाड़ी में उस समय अग्नितत्व का उदय होने पर उसका फल आकाशतत्व के समान जाने अतः उस समय शीघ्रता से अन्नादि का संग्रह करे क्योंकि वे दो महीने में ही मंहगे हो जायेंगे।।३३।।

स्वरज्ञानं शिवं पश्येल्लक्ष्मीपतिस्तथा भवेत् ।
एकत्र शरीरं यस्य सुखं तस्य सदा भवेत् ।।३४।।

स्वरशास्त्र ज्ञाता योगी सर्वत्र कल्याण प्राप्त करता है। वह सबसे अधिक धनी हो पाता है। एक नाड़ी का चालन अन्य नाड़ी में करने की युक्ति प्राप्त हो जाने पर एवं दोनों नाड़ियों को एकत्र करने का कौशल मिल जाने पर साधक अनुपम ऐश्वर्य तथा सुख प्राप्त करता है॥३४॥

नाड़ीत्रयं विजानाति तत्वज्ञानं तथैव च ।
नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटिरसायनं ।।३५।।

तीनों नाड़ियों (इड़ा-पिंगला-सुशुम्ना) के गुप्त तत्व को जाननेवाले के समक्ष लाखों करोड़ों रसायन वेत्ता भी नगण्य हैं॥३५॥

रवौ संक्रमणे नाड़ी गलान्ते च प्रवर्त्तते ।
सलिले वह्नियोगेऽपि रौरवं जगतीतले ।।३६।।

यदि मेषसंक्रान्ति लगने के क्षण में दैवज्ञ के जलतत्व के साथ उसी समय वह्नितत्व उदित हो रहा हो (अर्थात् जलतत्व तथा वह्नितत्व की सन्धि हो) तब पृथ्वी पर रौरव नरकतुल्य घोर कष्ट आनेवाला है॥३६॥

रोगप्रकरणं

सदाशिवउवाच–

महीतत्वे स्वरोगश्च जले च जलमातरः ।
रवौचारे तेजस्तत्वे वायुतत्त्वे च शाकिनी ।
शून्यतत्वेन रोगश्च पित्तदोषसमुद्भवः ।।३७।।

यदि प्रश्नकाल में दैवज्ञ के पृथ्वीतत्व का उदय हो, उस स्थिति में मंगल अथवा मृत्तिका जनित रोग है। जलतत्त्व का उदय होने पर जलमातृका जनित रोग है। जलमातृका जनित जो जो पीड़ा होती है वह रोगी को होगी। प्रश्न समय में दैवज्ञ की सूर्यनाड़ी में (दाहिनी नासिका) श्वास संचार होने पर उसमें अग्नि किंवा वायुतत्व का उदय होने पर शाकिनी कृत् रोग होते हैं। यदि प्रश्नकाल में दैवज्ञ की नासिका में आकाश तत्व का उदय हो तब पित्तदोष जनित व्यामोह होता है॥३७॥

दानं पुण्यं द्विजातीनां पिण्डश्राद्धं विधीयते ।।३८।।

ब्राह्मणों को दान तथा पितरों के लिये पिण्डदान श्राद्ध आदि पुण्यकार्य से समस्त रोग शान्त हो जाते हैं॥३८॥

आदौ शून्यगतं पृच्छेत् पश्चात् पूर्णो विशेद्यदि ।
मूर्च्छितेऽपि ध्रुवं जीवेत् यदर्थं परिपृच्छति ।।३९।।

जिस दिशा की ओर मुख करके प्रश्नकर्त्ता प्रश्न कर रहा है, यदि उस दिशा का नासारंन्ध्र प्रश्न करने के पूर्व में श्वास रहित है और प्रश्न के पश्चात् पूर्ण हो जाता है (दैवज्ञ की नासिका रंध्र के सम्बन्ध में यह कहा गया है) तब रोगी निश्चित रूप से जीवित बच जायेगा।।३९।।

चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्यस्थाने च पृच्छति ।
तदा प्राणविनिर्मुक्तो यदि वैद्यशतैर्वृत्तः ।।४०।।

यदि दैवज्ञ की दाहिनी नासिका की ओर बैठा प्रश्न करने वाला प्रश्न करे और तब दैवज्ञ की इड़ानाड़ी (बायींनासिका) से प्राणप्रवाह हो रहा हो, तब रोगी सैकड़ों वैद्यों द्वारा घिरा होने पर भी अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा।।४०।।

पिङ्गलायां स्थितो जीवो वामे दूतश्च पृच्छति ।
तदापि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः ।।४१।।

जब दैवज्ञ की पिंगला (दाहिनी नासिका) से प्राणप्रवाह हो रहा हो तब यदि प्रश्नकर्त्ता उसके बायीं ओर बैठकर प्रश्न करे तब रोगी का मरण निश्चित है। साक्षात् महेश्वर के उपस्थित होने पर भी वह मृत्युग्रस्त होगा।।४१।।

दक्षिणेन यदा वायुर्दुःखं रौद्राक्षरं वदेत् ।
तदा जीवित जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं लभेत् ।।४२।।

पिंगला (दाहिनी नासा) में वायु संचार काल में यदि विषम संख्यक वर्ण में प्रश्न हो तब रोगी अति कष्ट से निरोग होगा। और यदि इड़ा (वाम नासा) में प्राण संचार (दैवज्ञ का) हो रहा हो तब प्रश्नकर्त्ता विषमाक्षर संख्या का प्रश्न करे, तब भी अति कष्ट से निरोगावस्था मिलेगी।।४२।।

जीवाकारञ्च वा घृत्वा जीवाकारं विलोकयन् ।
जीवस्थो जीवित पृच्छेत्तस्माज्जीवन्ति ते ध्रुवम् ।।४३।।
प्रश्ने वाधःस्थितो जीवस्तदा जीवो हि जीवति ।
ऊर्ध्वे चारगतो जीवो याति जीवोयमालयम् ।।४४।।

दैवज्ञ की अधःस्थित वायु वहन काल में प्रश्न करने पर व्यक्ति आरोग्य प्राप्त करेगा

एवं ऊर्ध्वस्थ वायु वहन काल में प्रश्न करने पर रोगी अवश्य यमलोक जायेगा॥४३-४४॥

विपरीताक्षरं प्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि ।
विपर्ययश्च विज्ञेयं विषमस्थोदये सति ।।४५।।

दैवज्ञ की जिस ओर की नासिका की श्वास बन्द है, यदि उस ओर बैठकर प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करता है, उसका प्रश्न विपरीत वर्ण का है (अर्थात् यदि उस समय पिंगला नाड़ी दाहिनी नाक बन्द है, तब समाक्षर का प्रश्न पूछे और जब इड़ा नाड़ी-बायीं नाक बन्द है तब विषयाक्षर वाला प्रश्न पूछे) तब रोगी का अमंगल घटित होगा। यदि उस समय सुषुम्ना नाड़ी चलती हो, तब भी यही फल होगा॥४५॥

यस्मिन् भागे चरेज्जीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति ।
तदा जीवति जीवोऽसौ यदि रोगैः प्रपीडितः ।।४६।।

जिस ओर की नासिका से श्वास बह रही है (दैवज्ञ की नासिका की श्वास) यदि उस ओर से प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे, तब रोगी नाना पीड़ा से आक्रान्त होकर भी अवश्य रोगमुक्त होगा॥४५॥

वातोदये वातकरञ्च भक्ष्यं,
पित्तोदये पित्तकरञ्च भक्ष्यं ।
श्लेष्मोदये श्लेमकरञ्च भक्ष्यं,
पुंसि प्रमुक्ते प्रभवन्ति रोगाः ।।४८।।

यदि वायुतत्व के नासिका में उदय होते समय वातकारी वस्तु खायी जाये, अग्नितत्वोदय काल में पित्तवर्धक वस्तु खायी जाये, जलतत्वोदय काल में श्लेष्माकार वस्तु खायी जाये, तब वे वे रोग अवश्य हो जाते हैं॥४८॥

एकस्य भूतस्य विपर्ययेषा रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम् ।
तयोर्द्वयोर्बन्धुसुहृद्विपत्तिः पक्षत्रये व्यत्ययतोमृति स्यात् ।।४९।।

यदि एक तत्व विपरीत बहता है तब अपनी रोगवृद्धि, जब दो तत्व विपरीत प्रवाहित हो, तब बन्धु प्रभृति विपन्न विपत्तिग्रस्त होंगे। ऐसे ही १½ मास पर्यन्त विपरीत तत्वोदय से निश्चय ही मृत्यु होगी॥४९॥

मासादौ वत्सरादौ च पक्षादौ च यथाक्रमम् ।
कालक्षयं परीक्षेत वायुचारवशात् सुधीः ।।५०।।

वर्षारंभ में, मासारंभ में तथा पक्षारंभ में क्रमशः तत्वउदय (वायुवहन) द्वारा विचार करके विद्वानगण मृत्यु का समय जान लेते हैं।।५०।।

पञ्चभूतात्मकं देहं शशिस्नेहेन सञ्चितम् ।
वक्षयेत् सूर्यवातेन तेन जीवः स्थिरो भवेत् ।।५१।।

इड़ा से निकले अमृतसिंचन तथा पिंगला के श्वास वहन जनित ताप द्वारा पंचतत्वात्मक देह परिरक्षित हो रहा है। इसी कारण जीव स्थिर है। (इड़ा तथा पिंगला नाड़ी का एक मुख देह के निम्नभाग में सूर्यस्थल में तथा दूसरा मुख ऊपर चन्द्रस्थान में है। पिंगलानाड़ी सूर्यताप का वहन करने वाला मार्ग है। इड़ा नाड़ी शीतल चन्द्ररश्मि वहन करनेवाला मार्ग है। इड़ा चन्द्र के साथ तथा पिंगला सूर्य के साथ सम्बन्धित है। तभी इड़ा को चन्द्र नाड़ी तथा पिंगला को सूर्यनाड़ी कहते हैं। चन्द्र द्वारा सर्वदा इड़ा पथ से सुधा क्षरित होती है। जब नासिका में सूर्यनाड़ी (दाहिनी नासिका) से प्राण प्रवाह हो रहा होता है, तब यह सुधा सूर्यनाड़ी पथ से प्रवाहित होकर सूर्यताप से उष्ण तथा भस्मीभूत हो जाती है। किन्तु चन्द्रनाड़ी (वाम नासिका) से जब प्राणप्रवाह चलता रहता है, तब यह सुधा चन्द्रनाड़ी पथ से प्रवाहित होकर शीतलरूप से चन्द्रनाड़ी की शाखा-प्रशाखाओं द्वारा समस्त शरीर में व्याप्त होती है। इस जीव सुधा का पूर्णशोषण ही मृत्यु का कारण बन जाता है। जबतक यह सुधा चन्द्रनाड़ी की शाखाओं से होकर शरीर का पुष्टिसाधन करती रहती है, तभी तक जीवन चलता है। यह सुधा आंतरिक सूर्यताप से गलकर ही समस्त शरीर में आप्लावित होती है। अतः पिंगलानाड़ी (सूर्यनाड़ी) भी आवश्यक है। विचक्षण साधक योगबल से इस चान्द्री सुधा का क्षरण (देहस्थ सूर्यमण्डल में) होना रोक देते हैं और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।।५१।।

मासतं बन्धयित्वा तु सूर्यं बन्धयते यदि ।
अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यः कालेऽपि वञ्चते ।।५२।।

यदि कुंभक द्वारा पिंगलानाड़ी (दाहिनी नासिका से हो रहा प्राणप्रवाह) बन्द कर दी जाये तब योगी दीर्घजीवन प्राप्त कर लेता है। क्रमशः अभ्यास द्वारा पिंगला से श्वास प्रवाह को रोकने से मृत्यु पर विजय मिल जाती है।।५२।।

गगनात् स्रवते चन्द्रः काया पद्मानि सिञ्चति ।
कर्मयोगसमाभ्यासाद्रमते शशिनः प्लवात् ।।५३।।

जब आकाश तत्व उदित हो तब इड़ा से अमृत का स्राव होता है। योगी व्यक्ति

योगबल से शरीर के अन्दर स्थित मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा तथा सहस्त्र पद्म का इस अमृत से सिंचन करते हैं। यही कर्मयोग है। योगी व्यक्ति इस अमृत सिंचन से ही दीर्घजीवी होकर परमानन्द प्राप्त करते हैं।।५३।।

शशाङ्कं वारयेद्रात्रौ दिवा वार्यौ दिवाकरः ।
इत्याभ्यासरतो योगी स योगी नात्र संशयः ।।५४।।

रात्रि में इड़ा नाड़ी को बन्द रक्खे (वाम नासिका छिद्र में पुरानी रुई लगाकर उसे बन्द करे केवल दाहिनी नासिका से प्राणप्रवाह चलने दे)। इसी प्रकार दिन में दाहिनी नासिका छिद्र में रुई लगाकर उसे बन्द करे। केवल इड़ानाड़ी (वाम नासिका) से प्राण प्रवाह चलने दे। जो ऐसा कर सकते हैं, वे ही यथार्थ योगी हैं।।५४।।

दिवा न पूजयेल्लिङ्गं रात्रौ देवीं नपूजयेत् ।
रहसि ज्ञानजनकं पञ्चसूत्रे समन्वितम् ।।५५।।

दिन में लिंगपूजन तथा रात्रि में देवीपूजन न करे। अर्थात् दिन में पिंगला तथा रात्रि में इड़ानाड़ी को बन्द रखे। पंचतत्वात्मक स्वरज्ञान की अतीव गोपनीयता से साधना करे।।५४।।

अहोरात्रं यदैकत्र वहते यस्य मारुतः ।
तदा तस्य भवेदायुः सम्पूर्णवत्सरत्रयं ।।५५।।

संवत्सर, मास या पक्ष के प्रथम दिन में एक अहोरात्र (रातदिन मिलाकर) जिसकी दोनों नासिका से एक साथ वायु प्रवाहित हो (श्वासक्रिया हो) वह तीन वर्ष में मृत्यु ग्रसित होगा।।५५।।

अहोरात्रद्वयं यस्य पिङ्गलायां सदागतिः ।
तस्य वर्षद्वयं ज्ञेयं जीवतिं तत्ववेदिभिः ।।५६।।

संवत्सर, मास या पक्ष के प्रथम दिन से दो अहोरात्र पर्यन्त जिसकी पिंगला नाड़ह (दाहिनी नासिका) से वायु प्रवाहित हो, वह व्यक्ति उस दिन से लगाकर दो वर्ष पर्यन्त ही जीवित रहेगा, यह तत्ववेत्ता कहते हैं।।५६।।

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः ।
संवत्सरं यावदायुः स्याद्वदन्ति मनीषिणः ।।५७।।

वर्ष, मास अथवा पक्ष के प्रथम दिन से तीन अहोरात्र पर्यन्त जिसकी पिंगला नाड़ी

से श्वास प्रवाहित होती रहे वह व्यक्ति उस दिन से लेकर एक वर्ष में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, यह मनीषीगण का कथन है॥५७॥

रात्रौ चन्द्रो दिवा सूर्यो वहेद् यस्य निरन्तरम् ।
विजानीयात्तस्य मृत्युः षण्मासाभ्यन्तरे सुधीः ।।५८।।

संवत्सर, मास अथवा पक्ष के प्रथम दिन, रात में बायीं नाक से तथा दिन में दाहिनी नासिका से प्राण वायु प्रवाहित होने (श्वास क्रिया होने से) व्यक्ति छः माह में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है॥५८॥

एकादिषोडशाहानि यदि भानुर्निरन्तरम् ।
वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिकैः ।।५९।।

संवत्सर, मास अथवा पक्ष के प्रथम दिन से लेकर १६ दिन पर्यन्त दक्षिण नासिका से ही प्राण वायु निरन्तर प्रवाहित होने से वह व्यक्ति एक महीने में ही मृत्युग्रसित हो जाता है॥५९॥

सम्पूर्णं वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते ।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ।।६०।।

संवत्सर, मास अथवा पक्ष के प्रथम दिन जिसके दक्षिण नासापुट से श्वास प्रवाह हो तथा वाम नासिका बन्द रहे, वह उस दिन से लेकर १५ दिन के भीतर मृत्युग्रस्त हो जायेगा॥६०॥

सम्पूर्णं वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते ।
मासेन दृश्यते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ।।६१।।

वर्ष, मास अथवा पक्ष के प्रथम दिन दाहिनी नासिका बन्द रहे तथा वाम नासिका से वायु प्रवाहित होती रहे तब एक माह के भीतर मृत्यु हो जाती है॥६१॥

मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं प्रजायते ।
तदासौ चलितो ज्ञेयो दशाहे म्रियते ध्रुवम् ।।६२।।

जिसका मूत्र, मल तथा अधोवायु एक साथ ही बाहर निकले, वह दस दिनों के भीतर निश्चित रूप से मृत्युग्रस्त हो जाता है॥६२॥

एवं चन्द्रप्रवाहश्च सुखलाभो जयस्तथा ।
सूर्यचन्द्रप्रणाशे तु सद्योमृत्युर्न संशयः ।।६३।।

शास्त्र नियमानुसार समयानुसार इड़ानाड़ी में प्राण प्रवाह काल से सुखलाभ, जय

प्राप्त होती है। दोनों नासिका से एक साथ वायु प्रवाह बन्द होते ही तत्काल मरण हो जाता है॥६३॥

अरुन्धतीं ध्रुवञ्चैव विस्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ।।६४।।

जिनकी मृत्यु आसन्न है, वे सप्तर्षि मण्डल के आकाश में उगने पर उसमें अरुन्धती तथा ध्रुवतारा को नहीं देख पाते। साथ ही विष्णुपद एवं मातृमण्डल को भी देखने में असमर्थ हो जाते हैं।

अरुन्धतीं भवेज्जिह्वां ध्रुवो नासाग्रमुच्यते ।
भ्रुवोर्मध्ये विष्णुपदं तारकं मातृमण्डलं ।।६५।।

जिह्वा=अरुन्धतीतारा। नासिका का अग्र भाग=ध्रुवतारा। भ्रूमध्य=विष्णुपद। चक्षुओं में स्थित तारे= मातृमण्डल॥६४॥

नव भ्रुवः सप्तमो वा पञ्चतारा त्रिनासिका ।
जिह्वामेकं दिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम् ।।६५।।

जो भ्रूमध्य नहीं देख पाता वह नौ अथवा सात दिन में मर जायेगा। नेत्रतारा न दीखने से तीन दिनों में तथा जिह्वा का अग्रभाग न देख सकने एक दिन में मृत्यु प्राप्त हो जाती है॥६५॥

कोणमक्षोऽङ्गुलीभ्यान्तु किञ्चित् पीड्य निरीक्षयेत् ।
यदा न दृश्यते विन्दुर्दशाहेन जनोमृतः ।।६६।।

आखें बन्द करके अंगुलियों द्वारा आँखों को मसले। जिधर मसला जायेगा उसके दूसरी ओर चक्षुओं के बीच तारकाकृति उज्जव प्रभायुक्त एक बिन्दु दीखता है। (यही मार्तृमण्डल है) इसे न देख सकने पर एक दिन में ही मृत्यु हो जाती है॥६६॥

फलश्रुतिः

सदाशिव उवाच–

एतज्जानाति यो योगी एतत् पठति नित्यशः ।
सर्वदुःखैविनिर्मुक्तो लभते वाञ्छितं फलम् ।।१।।

इस शास्त्र को जो योगी जानते हैं तथा इसका नित्य पाठ करते हैं, वे समस्त दुःखों से छुटकारा पाकर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं॥१॥

स्वरज्ञानं शिरो यस्य लक्ष्मीः करतले भवेत् ।
एतत्तु शरीरं यस्य सुखं तस्य सदा भवेत् ।।२।।
प्रणवः सर्वदेवानां ब्रह्माण्डे भास्करो यथा ।
मृत्युलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ।।३।।

जिनका अवलम्बन स्वरज्ञान है उनके लिये लक्ष्मी सदा विराजित है। जिनके शरीर में स्वरज्ञान विद्यमान है अर्थात् जो इस शास्त्र के अनुसार प्राणाचार कर्म करते हैं, वे सदा सुख में रहते हैं।

जैसे प्रणव सभी वेदों में प्रधान है, जैसे विश्व में सूर्य प्रधान है, उसी प्रकार मृत्युलोक में स्वरशास्त्र सर्वपूज्य है।।२-३।।

नाड़ीत्रयं विजानाति तत्वज्ञानं तथैव च ।
नैव तेन भवेत्तुल्ये लक्षकोटिरसायनम् ।।४।।

जो इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना रूपी नाड़ीत्रय को, पृथ्वी, जल, तेजः, वायु तथा आकाश को जानते हैं उनके समक्ष लक्षकोटि रसायन शास्त्र जाननेवाले भी कुछ नहीं हैं।।४।।

एकाक्षरप्रदातव्यं नाड़ीभेदनिवेदकम् ।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणी भवेत् ।।५।।

जो महायोगी गुरु शिष्य को एकाक्षर परम मन्त्र से दीक्षित करते हैं तथा तीन नाड़ी के गूढ़ वृत्तान्त का उपदेश देते हैं, उनको देने के लिये समस्त पृथ्वी में ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसे देकर शिष्य गुरुऋण से मुक्त हो सके।।५।।

स्वरतत्वं तथा युद्धं देववश्यं स्त्रियस्तथा ।
गर्भाब्दरोगकालाख्यं नवप्रकरणान्वितम् ।।६।।

इस विज्ञान में स्वर, तत्व, युद्ध, देववशीकारण, स्त्रीवशीकरण, गर्भ, संवत्सर, रोग एवं कालरूपी ९ विषयों के सम्बन्ध में कहा गया है।।६।।

एवं प्रवर्त्तितं लोके सिद्धिदं सिद्धयोगिभिः ।
आचन्द्रार्कं गृही जीयात् पठनात् सिद्धिदायकम् ।।७।।

यह योगशास्त्र सिद्धिप्रद है जो सिद्धयोगीगण द्वारा लोक में प्रवर्त्तित किया गया। यदि गृही व्यक्ति इसका पालन करे तब वह तब तक स्थायित्व प्राप्त करके जब तक कि चन्द्र-सूर्य का अस्तित्व है। इसका पाठ करने से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है।।७।।

स्वस्थासने समासीनो निद्रामाहारमल्पकम् ।
चिन्तयेत् परमात्मानं यदवदेतद्भविष्यति ।।८।।

योगी व्यक्ति अल्प निद्रा तथा अल्पाहार का व्रत लेकर स्वस्थ शरीर से आसन पर बैठकर परमात्मा का चिन्तन करे इससे उसे योगसिद्ध मिलती है। वाक्सिद्धि प्राप्त होती है।।८।।

इति शिवगौरीसंवादे नवप्रकारान्वितः पवनविजयो नाम स्वरोदयः समाप्तः